"उक्त गुणों को * अप्रधान कहने में हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि काव्य के लिये उनकी कोई अवश्यकता ही नहीं है.........सत्य काव्य से यदि उनका संयोग हो जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसकी रमणीयता को वे कहीं बढ़ा देते हैं...सर्व साधारण के मनोरञ्जनार्थ रत्नों को जैसे कुन्दन में खचित करना पड़ता है, वैसेही काव्य को उक्त गुणों से अवश्य अलंकृत करना चाहिए......"। इत्यादि।

बड़े आश्चर्य का विषय है कि प्रथम तो आप कह चुके हैं कि विद्वत्ता की अणुमात्र भी आवश्यकता नहीं है, वह उलटी हानिकारक है। अब आप उन गुणों की (जो कि विद्वत्ता द्वारा प्राप्त हो सकते हैं) आवश्यकता बताते हैं और उनका काव्य में होना रमणीयतावर्द्धक बताते हैं। क्या अच्छा होता हमारे माननीय शास्त्री जी महाशय कुछ ऐसे महाकवियों के नाम और उनकी लोकमान्य रमणीय कविता के उदाहरण ठीक ठीक उद्धृत करते जो व्युत्पत्तिहीन केवल शक्तिमात्र से निर्माण की हुई होती। हां, पाश्चात्य महाकवि शेक्सपियर को लेखोपान्त में व्युत्पत्तिरहित कवि अवश्य कथन किया है, परन्तु शेक्सपियर को विद्वत्ता-विहीन कवि किस प्रकार मान सकते हैं, जब कि उन्हींके लेख में उक्त कवि का काव्य श्लेष योजना के उत्साह से पूरित कहा गया है। भला श्लेषमयी कविता बिना विद्वत्ता के कहां हो सकती है! अनुमान होता है कि हमारे शास्त्री जी की रुचि पश्चमीय भाषा के विद्वानों के अधिक मतानुयायी थी; अस्तु जो कुछ हो। शास्त्री जी के निबन्ध उच्चश्रेणी के होने पर भी यह हम अवश्य कह सकते हैं कि उक्त निबन्ध उनका सर्व सम्मत एवं समादरणीय नहीं हो सकता है। तथापि हम उक्त शास्त्री जी महाशय की अलौकिक काव्य मार्मिकता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं। केवल यही नहीं, हम उनके अनुग्रहीत भी हैं क्योंकि वे कालिदास, भवभूति यदि महाकवियों के काव्य पर बहुत ही सारगर्भित एवं विद्वत्तापूरित और चित्ताकर्षक आलोचना करके पूजनीय प्राचीन कवियों के लोकोत्तर काव्य का रसास्वाद चखाने के लिये एवं रुचि उत्पादन के लिये साधन रूप निबन्ध लिखकर छोड़ गए हैं, जिनके पढ़ने से उक्त महाकवियों के काव्य का अवर्णनीय रसानुभव काव्य प्रेमी एक साधारण पाठक भी कर सकता है। अस्तु।

* पदलालित्य, मृदुता, मधुरता, सरलान्वय, व्याकरण शुद्धता, छन्दों की निर्दोष व्यवस्था, इत्यादि गुणों को ऊपर उक्त निबन्ध में अप्रधान कह चुके हैं।

काव्य निर्माण का कारण कथन करते हुए हमने ऊपर जो उक्त शास्त्री जी के निबन्ध के विषय में लिखा है, यह लेखोपयोगी होने से आशा है कि अति प्रसङ्ग तथा निरुपयोगी न समझा जायगा।

उपर्युक्त विवेचना से यह प्रतिपादित हुआ कि काव्य निर्माण में कवि को जिस प्रकार 'प्रतिभा' की आवश्यकता है, उसी प्रकार निपुणता और अभ्यास की भी नितान्त अपेक्षा है।

यहां तक काव्य के कारण के विषय में बिचार किया गया। अब हम इसके दोषरहित रचना करने के विषय में लिखते हैं। क्योंकि काव्य निर्माण में उपर्युक्त कारण का ज्ञान जितना गौरवास्पद है, उसी प्रकार काव्य ग्रंथों में कथन किए हुए दोषों से अभिज्ञ हो के उसको जहां तक होसके दोषरहित करना भी कवि का प्रधान कर्त्तव्य है। आचार्य दण्डी ने कहा है—

"तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथश्चन"

अर्थात् काव्य में थोड़े भी दोष की उपेक्षा न करनी चाहिए, क्योंकि सम्पूर्ण अलङ्कारयुक्त भी काव्य एक दोष से दूषित होजाता है, जिस प्रकार सर्वालङ्कार विभूषित कामिनी का मुख एक नेत्र हीन होने से। एतावता काव्य के लक्षण में भी "अदोष" शब्द का प्रयोग प्रायः काव्याचार्यों ने किया है। वे दोष किस प्रकार के कितने हैं, सो

हम यहां उदाहरण नहीं दिखा सकते हैं। उनका ज्ञान काव्य ग्रन्थों द्वारा करना चाहिए। निस्सन्देह सर्वथा निर्दोष काव्य होना अत्यन्त दुःसाध्य है, क्योंकि काव्य प्रकाशादि में जहां काव्यदोष वर्णन किए गए हैं, वहां पर महाकवियों का काव्य भी दूषणयुक्त काव्य के उदाहरण में कहीं कहीं दृष्टिगत होता है, तब इतर काव्य के विषय में क्या कहा जा सकता है? किन्तु इस कथन से हमारा तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि महाकवियों का काव्य भी दूषणयुक्त है, क्योंकि आधुनिक काव्य में जिस प्रकार अधिक ढूंढने पर भी नाम मात्र गुण बहुत ही अल्प कहीं कहीं मिल सकते हैं, उसी प्रकार उन काव्यों में कुशाग्रबुद्धि द्वारा दोष गवेषण करने से भी किसी काव्य में कहीं एक दो उदाहरण मिल जांय तो बहुत है; सो भी केवल—

"दृष्टं किमपि लोकेस्मिन् न निर्दोषं न निर्गुणम्"

इस प्राचीन मत को सार्थक करने ही के लिये मानो उन कविरत्नों ने दोष रक्खे हों। परन्तु जो काव्य अकथनीय गुण राशि परिपूर्ण है, उसमें नाम मात्र कोई दोष कहीं पर हो तो भी कविकुल चूड़ामणि कालिदास के इस कथनानुसार गण्य नहीं हो सकता है।

"एकोहि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः"

यहां तक काव्य के प्राचीनकाल के इतिहास, सांप्रतकाल की अवनति के कारण, काव्य द्वारा लाभ, काव्य रचना में कठिनता, काव्य निर्माण का कारण, एवं उसके ज्ञान की आवश्यकता और निर्दोष रचना, इत्यादि विषयों पर लिखा गया है। इसको पढ़कर हमारे सहृदय पाठकों के जी में यह इच्छा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी कि जिस (काव्य) के विषय में ऊपर इतना विचार किया गया है, वह क्या है? और उसका यथार्थ स्वरूप कैसा है? यद्यपि इस छोटे से लेख में काव्य का उसके भेद प्रभेदों सहित स्वरूप प्रकाश करना तो दुःसाध्य ही नहीं वस्तुतः असंभव है, तथापि संक्षेप से उसका स्वरूप यहां लिखना परमावश्यक है। क्योंकि उसके लिखे बिना पाठकों की इच्छा पूरी न होने के अतिरिक्त यह निबन्ध भी अपूर्ण समझा जायगा। अतएव काव्य का शुद्ध

लक्षण

जिसको पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने पहिले बने हुए अन्य ग्रन्थों का निष्कर्ष निकालके एवं निज अपरिमित पाण्डित्य और अगाध अनुभव द्वारा अपने "रसगङ्गाधर" नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में निश्चित किया है, सो ही लिखते हैं। और वह यह है—

"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"

अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं।

रमणीय का अर्थ है अलौकिक आह्लाद करनेवाला अर्थात् लोकोत्तर आनन्द करनेवाले अर्थ को प्रगट करनेवाला शब्द काव्य कहा जाता है। रमणीयता कामिनियों के कटाक्षादि में भी होती है, अतः कटाक्षादि से पृथकता दिखाने के निमित्त लक्षण में 'शब्द' का ग्रहण किया गया है। काव्य में व्यंग्य ही प्रधान है और व्यंग्य का कथन हो नहीं सकता है, किन्तु वाच्यार्थ से अधिक प्रतीत होता है; एतदर्थ यहां 'वाचक' अर्थात् कथन करने वाला न कहके 'प्रतिपादक' कहा है। 'प्रतिपादक' शब्द का अर्थ 'कथन करनेवाला' समझना नितान्त प्रमाद है।

इसके मुख्य दो भेद हैं—'व्यंग्य' और 'वाच्य', सोही श्रीमदानन्दवर्धनाचार्य प्रणीत 'ध्वन्यालोक' गतकारिकाकार ने लिखा है—

"अर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मायो व्यवस्थितः।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्यभेदावुभौ स्मृतौ॥"

प्रथमोद्योत श्लो० २

अर्थ—सहृदयों के श्लाघ्य जो काव्य की आत्मा रूप अर्थ है उसके 'वाच्य' और 'प्रतीयमान' अर्थात् व्यंग्य नामक दो भेद हैं। इनमें से व्यंग्य के मुख्य दो भेद हैं, प्रधान और अप्रधान, अर्थात्

'ध्वनि' और 'गुणीभूतव्यंग्य'। चित्रमीमांसाकार विद्वद्वर अप्पय दीक्षित ने ध्वनि का स्वरूप यह कथन किया है—

"यत्र वाच्यातिशायि व्यंग्य स ध्वनिः।"

अर्थात् जहां वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्यार्थ में अधिक चमत्कार हो वह ध्वनि है। व्यञ्जना से जाने हुए अर्थ को व्यंग्य कहते हैं। सोही 'काव्यप्रकाश' में कहा है—

"व्यापारो व्यञ्जनात्मकः"

अर्थात् व्यङ्ग्यार्थ बोध में जो व्यापार है सो व्यञ्जना रूप है।

व्यञ्जना का अर्थ है एक अञ्जन विशेष। अञ्जन कई प्रकार के होते हैं। जैसे कज्जलादि अञ्जन प्रत्यक्ष पदार्थों को स्पष्ट दिखाता है। सिद्धाञ्जन देशान्तर वा लोकान्तर वस्तु को स्पष्ट दिखाता है। इसी प्रकार यह अञ्जन अभिधा और लक्षणा शक्ति से बोध नहीं कराए हुए अर्थ को स्पष्ट दिखाता है। वह व्यंगार्थ क्या वस्तु है सो कहा है, 'ध्वन्यालोक' की कारिका में—

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणिषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु॥"

प्रथमोद्योत श्लो० ४

अर्थ—महाकवियों की वाणी में जो पुनः अर्थात् वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ से अधिक प्रतीयमान वस्तु अर्थात् व्यंग्य अर्थ है, सो वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ से अन्य ही है, जिस प्रकार अङ्गनाओं में प्रसिद्ध अवयवों (अङ्गों) से अतिरिक्त लावण्य विभूषित रहता है।

इस ('ध्वनि') का उदाहरण काव्यरस मार्मिक पण्डितराज जगन्नाथ ने यह दिया है—

"शयितासविधेऽप्यनिश्वरा सफलीकर्तुमहो मनोरथान्।
दयिता दयिताननाम्बुजं दरमीलन्नयना निरीक्षते॥"

रसगङ्गाधर प्रथमानन

अर्थ—नायक के निकट ही सोई हुई सामर्थ्य विहीना प्रियतमा, अपने मनोरथ सफल करने के अर्थ, कुछ मुंदे हुए नेत्रों से प्रियतम के मुख कमल को देखती है।

यहां नायक आलम्बन विभाव है, निकट शयनादि कथन से जाना हुआ एकान्त स्थान उद्दीपन विभाव है, तादृश देखना आदि अनुभाव है और लज्जा उत्सुक्यादि व्यभिचारी है। इनके संयोग से नायिका की सम्भोगेच्छा व्यङ्ग्य है, और इसीमें चमत्कार है—अतः ध्वनि है।

इस (ध्वनि) अर्थात् प्रधान व्यङ्ग्य के दो भेद हैं—अविवक्षित वाच्य और विवक्षित वाच्य। इनके भी दो दो भेद हैं—पहिले (अविवक्षित वाच्य) के अर्थान्तर संक्रमित वाच्य और अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य, और दूसरे (विवक्षित वाच्य) के असंलक्ष्य-क्रम, और संलक्ष्यक्रम। और इनके आवान्तर भेद तो बहुत से हैं। भाव रस आदि सब 'असंलक्ष्यक्रम' के भेदान्तर हैं। कहांतक लिखें असंख्य भेद हैं। 'गुणीभूत व्यङ्ग्य' का चित्र मीमांसाकार ने यह लक्षण लिखा है—

"यत्र व्यङ्गं वाच्यानतिशायि तद्गुणीभूत व्यङ्गम्"।

अर्थात् जहां वाच्य से व्यङ्ग में अधिक चमत्कार न हो अर्थात् वाच्यार्थ प्रधान हो और व्यङ्ग गौण हो। इसका उदाहरण यह है—

"राघव-विरह-ज्वाला संतापित सह्य शैल शिखरेषु।
शिशिरे सुखं शयानाः कपयः कुप्यन्ति पवनतनयाय"॥

रसगङ्गाधर, प्रथमानन।

अर्थ—लीला-मानुष-विग्रह महाराज श्रीरामचन्द्रजी के (श्रीजनकनन्दिनी के वियोगजनित) बिरह ज्वाला से संतापित सह्याद्रि के शिखर पर शिशिरकाल में सुख पूर्वक सोए हुए बानरगण पवनतनय श्रीहनुमान जी पर कोप करते हैं। यहां वाच्यार्थ तो यह है, और श्री बैदेही के कुशल सम्वाद निवेदन से श्रीरघुनाथ जी की विरह ज्वाला दूर होने से शीतलता हो गई, यह व्यङ्ग्य है, सो गुणीभूत है, क्योंकि इस व्यङ्ग की अपेक्षा उक्त वाच्यार्थ ही में अधिक चमत्कृति है। इसके मुख्य भेद आठ हैं।

१–अगूढ़, २ अपराङ्ग, ३ वाच्य सिद्ध्यङ्ग, ४ अस्फुट, ५ संदिग्ध, ६ तुल्य प्रधान, ७ काक्वाक्षिप्त और, ८ असुन्दर। इनके भी भेदान्तर बहुत हैं।

काव्य के प्रथम भेद अर्थात् व्यङ्ग्यके केवल दिङ्मात्र मुख्य भेद ऊपर दिखाए गए हैं। काव्य का दूसरा भेद वाच्य अर्थात् अलङ्कार है, सोही ध्वनिकार ने कहा है—

"तत्र वाच्यः प्रसिद्धो यः प्रकारै उपमादिभिः।
बहुधा व्याकृतः सोऽन्यै काव्य लक्ष्म विधायिभिः" ॥
प्रथमोद्योत् श्लो० ३

अर्थ—तहां अर्थात् काव्य के दोनों भेदों में प्रसिद्ध जो वाच्य भेद है, सो 'उपमा' आदि अलङ्कारों के प्रकार से बहुधा दिखाया गया है। इसका स्वरूप चित्रमीमांसा में यह लिखा है—

" यद्व्यङ्ग्यमपिचारु तच्चित्रम्।

अर्थ—जो बिना व्यङ्ग्य के भी सुन्दर अर्थात् चमत्कारवाला हो, वह चित्र अर्थात् अलङ्कार है। यह तीन प्रकार का होता है। शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और शब्दार्थ उभयालङ्कार। शब्दालङ्कार उदाहरण, यथा—

"नव-पलाश-पलाश-वनं पुरः स्फुट-पराग-परागत-पङ्कजम्।
मृदुलतान्त-लतातमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः" ॥
माघ ६–२

अर्थ–नवीन पलाशों (पत्रों) युक्त पलाश (ढाक) वृक्ष के बन, पराग (पुष्परज) से परागत (व्याप्त) खिले हुए कमल, आतप से किञ्चित् म्लानता को प्राप्त लताओं के कोमल अग्रभागवाले, पुष्प समृद्धि से सुगन्धित बसन्त ऋतु को वह (श्रीकृष्णचन्द्र) प्रथम देखते हुए। यहां पलाश, पराग, आदि पदों की द्विरुक्ति होने से शब्दों में चमत्कार है। अतः यहां शब्द प्रधानं यमकालङ्कार है।

अर्थालङ्कार उदाहरण यथा—

श्यामं सितञ्च सुदृशो नदृशोः स्वरूपं
किन्तु स्फुटं गरलमेतदथामृतञ्च।
नोचेत्कथं निपतनादनयोस्तदैव
मोहं मुदञ्च नितरां दधते युवानः ॥
रसगङ्गाधर द्वितायानन

अर्थ–सुलोचनी (स्त्री) के (नेत्रोंमें) श्याम और श्वेत रङ्ग नेत्रों का स्वरूप नहीं है, किन्तु प्रत्यक्ष अमृत और बिष है; यदि ऐसा न होता तो इनका कटाक्षपात होते ही उसी क्षण युवापुरुष अत्यन्त मोह तथा मोद को क्यों प्राप्त होते! यहां इस वाच्यार्थही में चमत्कार होने से हेतु अपन्हुति अलङ्कार है।

उभयालङ्कार उदाहरण यथा—

दोहा

वन्दनीय किहिक नहीं वे कविन्द मतिमान।
स्वर्ग गये हू काव्यरस जिनको जगत जिहान ॥
अलङ्कार प्रकाश द्वितायोल्लास *

यहां 'जगत', 'जिहान' ये भिन्न आकारवाले शब्दों की प्रथम में एकार्थता भान होने में चमत्कार होने से "पुनरुक्तिवदाभास" नामक शब्दार्थ उभय प्रधान अलङ्कार है।

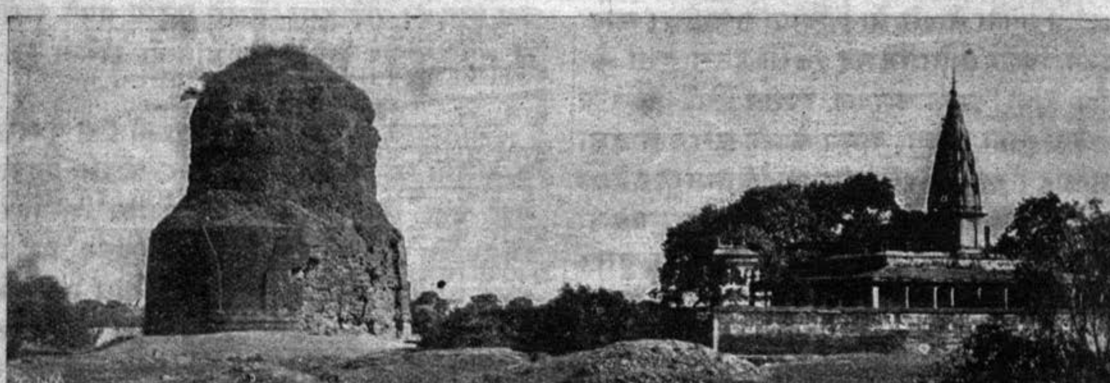
शब्द, अर्थ, और शब्दार्थ उभय, इन तीनों प्रकार के अलङ्कारों का ऊपर सामान्य स्वरूप प्रकाश किया गया है। विशेष भेद तो 'वक्रोक्ति' आदि शब्दालङ्कार के 'उपमा' आदि अर्थालङ्कार के और 'पुनरुक्त वदाभास' आदि उभयालङ्कार के अनेक भेद हैं, यहां कहां तक लिख सकते हैं।

संक्षेप से हमने काव्य के दोनों भेद व्यङ्ग्य और वाच्य का स्वरूप इस प्रकार प्रकाशित किया। इससे यद्यपि उसका सम्यक्ज्ञान प्राप्त करने में हमारे पाठक सन्तुष्ट न होंगे, क्योंकि विस्तार भय से बहुतही समास किया गया है, तथापि इतने से भी काव्य की गौरवता का ज्ञान तो अवश्य ही होगा। अब उपसंहार में केवल हमको यह वक्तव्य है, कि हमारे प्राचीन सबही साहित्य ग्रन्थकारों ने उपर्युक्त प्रकार से काव्य का स्वरूप और उसके भेद कथन किए हैं और इन्हीं में काव्यत्व माना है। किन्तु इसके विरुद्ध पश्चिमीय

* 'अलङ्कार प्रकाश' ग्रन्थ हिन्दी भाषा का गद्य पद्य में हमने लिखा है। इसमें काव्य प्रकाश आदि कई प्राचीन ग्रन्थों के मत से विस्तार पूर्वक अलङ्कार वर्णन किए गए हैं।

विद्वानों के मतानुयायी आधुनिक कितने काव्यज्ञ महाशयों का मत कुछ विलक्षण है। अर्थात् वे महाशय केवल प्रकृति के वर्णन मात्र में ही 'काव्यत्व' प्रतिपादन करते हैं। निस्सन्देह यह विषय भी अवश्य आलोचनीय है, कि कौन सा मत युक्तियुक्त है और वस्तुतः 'काव्यत्व' की निवास-भूमि किसको कह सकते हैं। किन्तु इस विषय पर विस्तारभय से यहां आलोचना न करके एक स्वतन्त्र 'काव्यत्व' शीर्षक निबन्ध में लिखने के लिये हम अपने सहृदय पाठकों से आज्ञा लेते हैं। इस निबन्ध में तो हमारा उद्देश्य केवल काव्यकर्त्ता कवि के लिये कर्त्तव्य कार्य और तत्सम्बन्धीय कतिपय विषयों पर विचार, और काव्य का संक्षेप से स्वरूप प्रकट करना मात्र था, सो हम ऊपर निवेदन कर चुके। आशा है उपर्युक्त विवेचन हमारे काव्यरसिक पाठकों के अरुचिकर न होगा॥

सारनाथ



ईसा से ४७७ वर्ष पूर्व भारतवर्ष के एक कपिलवास्तु नामक नगर में राजा शुद्धोदन की पटरानी मायावती के उदर से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। इसके धरती पर गिरते ही 'ज्योतिषियों ने यह भविष्यद्वाणी की कि यह बालक या तो चक्रवर्ती राजा होगा, अथवा राज्य छोड़ वैराग्य लेगा, परन्तु उसमें भी प्रसिद्ध होगा"। राजा ने यह वाणी सुन प्रारम्भ से ही ऐसी रचना की जिससे बालक सिद्धार्थ का ध्यान संसार की माया में फंसता जाय और वह दुःख का स्वप्न भी न देखने पावे, क्योंकि उनसे संसार से विरक्ति उत्पन्न हो-जाने की सम्भावना है। उसका पालन पोषण बड़े लाड़ प्यार से हुआ। कुछ बड़े होने पर बिवाह की चर्चा छिड़ी। एक अतीव सुन्दरी कन्या से बिवाह कर दिया गया और नाना प्रकार के सुख तो थेही, अब इस नवीन प्रकार के सुख के अनुभव प्राप्त करने का अवसर सिद्धार्थ को दिया गया। इनका परस्पर संयोग भी वृथा नहीं गया, एक पुत्र राहुल नाम का उत्पन्न हुआ। यह सब कुछ तो हुआ, किन्तु होतव्यता अति प्रबल है। उसे कौन मेट सकता है? इस संसार में जैसे बड़े बड़े परिवर्तन सदा छोटी छोटी बातों से उत्पन्न हो जाया करते हैं, वैसे ही अब सिद्धार्थ के सङ्ग हुआ। ऐसा कहते हैं कि एक दिन वह अपने रथ पर चढ़ा भृत्यगण सहित फुलवारी की सैर को जा रहा था

कि मार्ग में उसे एक वृद्ध पुरुष देख पड़ा जिसके शरीर की एक एक रग जीर्णता के कारण पृथक पृथक दिखाई देती थीं; न मुख में एक दांत था, न माथे पर एक केश; सारे शरीर पर झुर्रियां लटक रही थीं; बिचारा लाठी टेकता गरदन कंपाता चला जाता था। इसे देखते ही सिद्धार्थ ने सारथी से प्रश्न किया "यह कौन मनुष्य है? क्या इसके वंश में कोई विशेषता है अथवा मनुष्यमात्र की यही दशा होती है?" सारथी ने उत्तर दिया "यह एक वृद्ध पुरुष है; इसकी इन्द्रियां मन्द पड़गई हैं; इसकी दैहिक शक्ति दुःख झेलते झेलते नष्ट होगई है; इसके अपने बिगानों ने इसे छोड़ दिया है; वह इस समय अनाथ अशरण हो रहा है। इसका इस दशा को प्राप्त होना इसके वंश से विशेष कोई सम्बन्ध नहीं रखता। एक दिन मनुष्यमात्र की यही दशा होनी है। इस सृष्टि में जितने जीवधारी हैं, उन सबका अन्तिम परिणाम यही है"। यह सुनते ही राज कुमार ने रथ लौटाने की आज्ञा दी। उसके हृदय में उसी समय से एक सोच उत्पन्न हुआ। संसार की यावत् वस्तुएं उसे अब भय दिलाती देख पड़ने लगीं। जिन वस्तुओं को वह पहिले प्राण से अधिक प्रिय रखता था, उनसे अब आन्तरिक घृणा सी होने लगी। सारांश यह कि संसार से विरक्त करनेवाले भाव उसके हृदय में उत्पन्न हो गए और प्रतिक्षण वे प्रबल होते गए।

ऐसा कहते हैं कि राजपाट छोड़ने के पूर्व एक दिन रात्रि के समय वह अपनी पत्नी के निकट गया और उसे नवजात राहुल को गोद में लिये निद्रित अवस्था में पाया। "संसार और घर द्वार छोड़ने के पूर्व अपने आत्मज को निज अङ्क में ले हृदय से लगाने की उत्कट कामना उसके मन में हुई, परन्तु ऐसा करने से कदाचित् उसकी पत्नी जाग उठे और वह तब अपने महत् कार्य्यसम्पादन में दृढ़ न रह सके, अपने मन को सम्हाल, अपने मनोगत विचारों पर दृढ़ हो, दुख और बेमन से सिद्धार्थ उस स्नेह और आनन्दमय दृश्य से हट गया।" वहां से हटते ही राजपाट को लातमार राजगृह की ओर चला। वहां उसने छओं शास्त्र का अध्ययन किया। फिर बुद्धगया के निकट तपस्या की। परन्तु तपस्या से कोई प्रत्यक्ष लाभ न देख वहां से भी वह चल दिया। तपस्या छोड़ने पर उसके पांच शिष्य उसका साथ छोड़ काशी को चले आए। सिद्धार्थ निरञ्जरा नदी के निकटवर्ती वन में बोधी वृक्ष के नीचे बैठके सोचने लगा और बहुत काल तांई विचारसागर में निमग्न रहा। अन्त को उसकी आंखें खुलीं। उसके नेत्रों के सम्मुख से अन्धकार का पर्दा उठा और वह उस ज्ञान को प्राप्त हुआ जिससे मनुष्य अपने दुःखों से मुक्ति पाकर निर्वाण को प्राप्त हो सकता है।

गौतमबुद्ध (सिद्धार्थ अब इसी नाम से पुकारा जाने लगा था) यहां से चलकर काशी पहुंचा और वहां सबसे पहिले अपने पांच शिष्यों से मिला जो सरनाथ के समीप ईसापट्टन मठ में इसके उपदेशों पर विश्वास लाए। पांच महीने में ६० शिष्य और बढ़े, और फिर इन सब के निरन्त धर्मोपदेश और उद्योग से इनके धर्म्म का प्रचार होने लगा और उसको बराबर वृद्धि होती गई। परन्तु अब बुद्धदेव का अन्त निकट पहुंचता आता था, यहां तक कि ८० वर्ष के वयस में कुशीनार नामक स्थान में इनका शरीर छूट गया। दाह क्रिया के पश्चात जो अंश अस्थीरूप में बच गया, उसके आठ भाग हुए और महाराज अशोक ने उनके स्मारक में आठ स्थानों में बड़े बड़े स्तूप और मठ बनवा दिए। आज इन्हीं आठ मठों में से एक का वृत्तान्त हम पाठकों को सुनाया चाहते हैं, और जिसके लिये इतनी भूमिका बांधी गई है।

सारनाथ शब्द के अर्थ प्रभु वा स्वामी के हैं और यह महादेव की एक उपाधि है, जिनका प्रतिरूप एक लिङ्ग, समीप ही झील के तट पर एक मन्दिर में विद्यमान है। परन्तु केनिङ्गहैम

साहब * का मत है कि "यह शब्द 'सारङ्गनाथ' का अपभ्रंश है और यह शब्द भी महादेव की उपाधि है"। जिस झील के तट पर यह मन्दिर है उसे सारङ्गताल कहते हैं। इस वार्ता से केनिङ्गहैम महाशय के कथन की पूरी पुष्टि होती है। अब बौद्धमतवाले कहते हैं कि सारङ्गनाथ बुद्धदेव की उपाधि थी†। इसके प्रमाण में वे यह कहते हैं कि बुद्धदेव अपने पूर्वजन्म में ठीक इसी स्थान पर मृगयूथ के राजा होकर परिभ्रमण कर चुके हैं। इस वार्ता का प्रमाण अब ताईं मिलता है कि प्राचीन समय में इन स्तुपों के समीप ही कहीं मृगबाटिका वा हरिनों का रमना था, जिसके विषय में राजा शिवप्रसाद अपने इतिहास में लिखते हैं कि "यह जगह अवश्य सारनाथ के पास रही होगी। अब तक भी वहां खोदने से बौद्धों की मूर्तियां निकलती हैं और बौद्धों की पुरानी इमारतों की नेव मिलती हैं। स्तूप भी मौजूद हैं।" इसमृगबाटिका का बौद्धमतवाले बड़ा आदर करते हैं, क्योंकि इसके विषय में उनके यहां एक विचित्र कथा‡ प्रचलित है। वह यह है कि "प्राचीन समय में काशी के एक राजा आखेट के बड़े अनुरागी थे। इन्होंने इस बन के बहुतेरे मृगों का खेल में बध किया। इसपर मृगयूथ नृपति (बुद्ध) ने उन्हें रोका और यदि खेल में मृगों का बध न करें तो एक मृग प्रति दिन देने की प्रतिज्ञा की। राजा ने यह बात स्वीकार करली और उसे एक मृग प्रति दिवस मिलता रहा। ऐसा कहते हैं कि कुछ काल के पश्चात् एक दिन एक गर्भधती मृगी की राजा के पास जाने की पारी आई। उस मृगी ने जाना अस्वीकार किया और कहा कि यद्यपि मेरा प्राणान्त आन पहुंचा है, परन्तु मेरे गर्भ के अत्यल्प जीव का दिन नहीं पुरा हुआ। मृगनृपति (बुद्ध) को यह सुनकर बड़ी दया आई और उसके बदले वह आप राजा के निकट चले गए। राजा यह कथा सुनकर बड़ा चकित हुआ और कहने लगा कि "मैं मनुष्य देह धर के भी अबताईं एक मृग के समान हूं। परन्तु आप मृगरूप में मनुष्य हैं।" यह कहकर राजा ने मृगरूपी कर लेना बन्द कर दिया और वह बन भी सदा के लिये मृगबाटिका बनाने को दे दिया"।

इसी रमने में बौद्धों का स्तूप और मठ है। परन्तु मठों का तो अब पता नहीं। बनारस के रहनेवाले इन स्तूपों को धमेख कहते हैं। इस 'धमेख' शब्द की उत्पत्ति के विषय में बड़ा मत विभेद है। कुछ तो यह कहते हैं कि यह 'धर्ममृग' का अपभ्रंश है, क्योंकि यहां हरिन बहुत पाए जाते थे और उनका बध उनके धर्मग्रन्थों में मना था। दूसरे यह कहते हैं कि यह शब्द 'धर्मोपदेशक' से* होते होते कालान्तर में धमेख बन गया है, क्योंकि उनका कथन है कि बौद्धधर्म का उपदेश प्रथम प्रथम इसी स्थान से प्रारम्भ हुआ है। और महाराज अशोक ने इसी स्थान पर एक कीर्तिस्तम्भ निर्माण करा के 'धर्मोपदेशक' उसका नाम रक्खा। इन दो अनुमानों से यह निर्णय करना कि वास्तव में यह शब्द क्या है, बड़ा कठिन है; परन्तु मेजर केनिङ्गहैम का कथन अधिक युक्ति-युक्त जान पड़ता है।

सीलोन के बौद्ध धर्मग्रन्थों में सारनाथ को स्वयं एक नगरी माना है और लिखा है कि सारनाथ काशीराज्य के अन्तर्गत है। परन्तु और कई प्राचीन ग्रन्थों में इसे बनारस का एक भाग माना है। अब वर्तमान समय का बनारस वरुणा नदी से कोई १ मील दक्षिण दिशा में स्थित है और सारनाथ उससे तीन मील और उत्तर दिशा

* See Archaelogical Survey N. W.-P. Vol. I by G. Cunningham.

† See Sherring's Benares.

‡ See Huen Thsang's 'विपाकु'

* See 'Monumental Antiquities and Inscriptions, Vol. II. P. 215,

में है। सारनाथ और बनारस के बीच अब ताईं कहीं ऐसे खण्डहर या पुरानी इमारतों के ईंटों का ढेर और कहीं ऐसे टीले देख पड़ते हैं, जिनसे यह अनुमान होता है कि किसी समय में बनारस की बस्ती वहीं रही होगी।

चीन देश का फाहियान नाम का यात्री ५ वीं शताब्दी के आदि में भारतवर्ष में आया था। वह अपने भ्रमणवृत्तान्त में लिखता है कि "हेङ्ग नदी (गङ्गा नदी) के किनारे किनारे पश्चिम दिशा में जाने से मैं फोलोनाई (बनारस) नामक नगर में पहुंचा। यह नगर कियाशि (काशी) राज्य में है। इस नगरी के उत्तर पश्चिम कोण में दस ली (वर्तमान २ माइल से कुछ कम) के अन्तर पर सारङ्गनाथ का मन्दिर स्थित है।" वह इसीके समीप एक मठ का वर्णन करता है और लिखता है कि इसके सन्निकट चार स्तूप और थे, जिनमें से एक तो अब तक उस स्थान पर कीर्ति स्वरूप खड़ा है, जहां श्री बुद्धदेव ने पहिले पहल अपने धर्म पर व्याख्या की थी। वह इसीके "आस पास दो 'सेङ्ग क्यालान' (मठ) का वर्णन करता है, और लिखता है कि "इसमें धर्म्मानुरागी जन रहा करते थे। प्राचीन समय में यह रमना 'पीचीफो' (बुद्ध) का निवासस्थान था, हरिण इस वन में बहुतायत से पाए जाते थे। जब महात्मा बुद्ध अपने महान मनोव्रत में कृतकार्य्य हुआ चाहते थे, तो देवताओं ने यह गान किया कि राजा 'पीटसिङ्ग' (शुद्धोधन) के पुत्र ने धार्मिक जीवन अङ्गीकार कर लिया है, उसने धर्मविषयक गूढ़ तत्वों का भली भांति अध्ययन किया है, एक सप्ताह में वह 'फो' हो जायगा। 'पीचीफो' यह सुन कर नी बैान (निर्बाण) को प्राप्त हुआ, और इसीसे यह स्थान उस अविनाशी के हरिण का रमना कहा जाता है। उस महानुभाव ने इस स्थान पर धर्म व्याख्यान दिया था, इस कारण उसके अनुयायी जनों ने यहां (इस स्थान पर) एक मठ बनवा दिया है"। यह फाहियान का कथन है। इसके अनन्तर ७वीं शताब्दी के मध्य में एक दूसरा चीनी यात्री हुयन थ्साङ्ग नामक देशाटन करता करता भारतवर्ष में आया था। उसने भी अपने भ्रमण-वृत्तान्त में सारनाथ के विषय में बहुत कुछ उल्लेख किया है, जिसका कुछ अंश उद्धृत करके मैं पाठकों को सुनाता हूं। वह लिखता है कि "गङ्गा नदी से लगभग दस ली के अन्तर पर ईशान कोण में मृगउपवन स्थित है। यह उपवन आठ भागों में विभाजित है, और चारों ओर दिवार से घिरा है। इसके बीच के खम्भे शृङ्खलाबद्ध खड़े हैं, और सुन्दर सुन्दर दोमहले प्रासाद बने हैं। एक दो सौ फीट ऊंचा विहार है जिसके शिखर पर स्वर्ण का उभड़ा हुआ एक अनमोला (आम्र) फल बना हुआ है। इसकी नेव और सोपान पत्थर को हैं। कीर्तिस्तंभ के चारों ओर ईंट के आलों की १०० पंक्तियां हैं। इन प्रत्येक आधारों में बुद्धदेव की स्वर्णप्रतिमा स्थापित है। विहार के मध्य में बुद्धदेव की एक पीतल की बड़ी मूर्ति है। इस विहार से दक्षिण-पश्चिम कोण में एक दुसरा स्तूप पत्थर का बना हुआ खड़ा है, जिसे महाराज अशोक ने निर्माण कराया था।

इसके अभिमुख एक तीसरा स्तम्भ ७० फीट ऊंचा है, जिसके विषय में कहा जाता है कि इसी स्थान पर बुद्ध ने पहिले पहल धर्मोपदेश किया था। इसके समीप ही सात छोटे स्तूप और हैं। इस रमने के भीतर तीन जलाशय हैं, जहां महात्मा बुद्ध ने स्नानादि किया था। इनमें से एक जलाशय के तट पर एक चौकोन पत्थर रक्खा हुआ है, जिसके विषय में कहा जाता है कि इसपर बुद्ध देव के काछे के सूत्रों का चिन्ह देख पड़ता है"।

ये दोनों यात्री इस विषय पर एकमत हैं और दोनों हो इस वार्ता का अपने अपने वृत्तान्त में उल्लेख करते हैं कि जहां महात्मा बुद्ध ने पहिले पहल धर्मव्याख्यान दिया था, और जहां उसके पांच शिष्यों ने आकर उसको अभिवन्दना की थी और उसके उपदेशों पर विश्वास लाए थे, वहां एक

कीर्तिस्तम्भ निर्माण करा दिया गया है। इससे सिद्ध होता है कि इन दोनों ने एक ही स्तंभ को देखा था।

हुएन थसाङ्ग के लेख से सिद्ध होता है कि उसके समय में सारनाथ के रमने में कई एक स्तूपस्तम्भ थे, परन्तु काल की कुटिलता और विधर्म परायण राजाओं के क्रूर अत्याचारों से अब केवल दो स्तम्भ देखने में आते हैं और शेष सब मिट्टि में मिला दिए गए, जिनका अब कहीं पता निशान भी नहीं मिलता* इन दोनों में से एक धमेख के नाम से प्रसिद्ध है, और दुसरा २५०० फीट की दूरी पर इससे ठीक दक्षिण दिशा में है, जिसे चौखण्डी कहते हैं। यह स्तम्भ लोरी-की-कुदान † के विचित्र नाम से भी प्रसिद्ध हो गया है। इस की ऊंचाई ७४ फीट है, और शिखर पर एक अष्टकोण भवन बना हुआ है, जो २३½ फीट ऊंचा है। इस भवन के एक द्वार पर एक शिलालेख लगा है, जिसमें लिखा है कि बादशाह हुमायूं इस टीले पर चढ़े थे, और उसीके स्मारक चिन्ह में यह भवन निर्माण कराया गया है। इस समय सारनाथ में चार मुख्य खण्डहर देख पड़ते हैं, और मैदान में जिस ओर देखिए उधरही टूटी फूटी ईंटें पड़ी हैं, जिनमें से कुछ तो सादी और कुछ पर चित्रकारी की हुई हैं। ये सब ईंटें दृढ़ और पक्की हैं। इस खण्डहर में कहीं कहीं खण्डित मूर्तियां भी देख पड़ती हैं, परन्तु दिनों के फेर ने और कुटिल काल ने इन्हें ऐसा जर्जरित बना दिया है कि, इन्हें देखते ही चित्त में यह भाव उठता है कि वास्तव में यह संसार परिवर्तनशील है, सदा एक सा दिन किसी का भी नहीं रहा; अन्यथा यह कब सम्भव था कि जहां बौद्ध धर्म का जन्म हो, जिसे तीर्थ स्थान समझ के चीन जापान और तिब्बत देश से यात्रीजन दर्शन के हेतु आवें, जिन महात्मा बुद्ध के विमल यश ने धार्मिक संसार में भारतवर्ष का मुख उज्वल कर रक्खा है, उनके स्मारक में कीर्ति-स्तम्भ बनें और उनकी यह दुर्दशा हो कि उनके शिखर पर कांटे और घास पात उग आए हों और उलूक और चील कौओं ने अपने घोंसले बना लिए हों। परन्तु नहीं, सृष्टि की यह सामान्य बातें हैं, ऐसा नित्य प्रति हुआ ही करता है और होता ही जायगा।

हम ऊपर कह आए हैं कि इस समय सारनाथ में चार मुख्य खण्डहर देख पड़ते हैं, इन खण्डहरों में से एक तो पत्थर का वह बड़ा स्तम्भ है जो धमेख के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरा उस स्तम्भ का खण्डहर जिसे बाबू जगतसिंह ने ईंटों की लालच से खुदवा डाला था, जिसका स्थानान्तर में वर्णन किया जायगा। तीसरे उन इमारतों के चिन्ह, जिनको जेनरल कनिङ्गहैम ने स० १८३५-३६ ई० में खुदवा के पता लगाया। चौथे ईंटों का एक ऊंचा और स्थूल टीला जिसे चौखण्डी कहते हैं, और जिसके शिखर पर एक अष्टकोण भवन बना है।

अब हम पहिले धमेख का वर्णन किया चाहते हैं, क्योंकि चारों में यही मुख्य है। इस गोल स्थूल

---

* इन क्रूर अपहरणों के दृष्टान्त में हमें बड़े दुख से प्रगट करना पड़ता है कि वरुणा नदी पर पुल बनाने के समय काशी मुनिसिपालिटी ने ४८ बड़ी बड़ी मूर्तियां और बहुतेरे चित्रकारी किए हुए पत्थर सारनाथ से उठवाके सेतुबन्ध के आस पास जल का तोड़ रोकने के हेतु नदी में फेंकवा दिये थे, और इसी प्रकार जब दूसरा पुल बना तो वहीं से पचास साठ गाड़ियां पत्थर लदके गईं, और जल में फेंक दी गईं, परन्तु जगतसिंह (यह राजा चेतसिंह के दिवान थे) की कार्रवाइयां इनसे भी बढ़ गई हैं। शहर में एक बज़ार बनवाने के हेतु इन्हों-ने सारनाथ का एक सारा स्तूप खोदवा के गिरवा डाला, और ईंटें और पत्थर ले गए। मि. शेरिङ्ग इनके इस जघन्य कार्य्य के विषय में लिखते हैं कि धमेख के नीचस्थ भाग का ऐसे कुदशा को प्राप्त होना जगतसिंह की निकृष्टता और अधमता के कारण हुआ है, और ऐसा कहा जाता है कि केवल कुछ रुपए बचाने के लिये इस स्तूप का उन्होंने असाहसिक नाश कर डाला।

† इस विचित्र नामकरण का कारण यह बतलाते हैं कि लोरी नाम का एक अहीर उस पर से कूद कर मर गया था, तभी से बनारसवाले इस लोरी-की-कुदान कहने लगे हैं।

स्तम्भ का व्यास धरातल में ९३ फ़ीट है, ग्रैार यह १२८ फ़ीट ऊंचा है। इसके नीचे का भाग ४३ फ़ीट की ऊंचाई तक पत्थर का बना हुआ है, जिसके पत्थर लोहे की कीलों से बैठाए हुए हैं। इसका ऊपरी भाग ईंटों का है, किन्तु बाहर की एक वा दे। ईंटें खसक कर नष्ट हो गई हैं, जिससे यह सन्देह होता है कि इनमें या तो पत्थर जड़े रहे होंगे, अथवा पलस्तर रहा होगा ग्रैार इस प्रकार रंग दिया हो कि वह भी नीचे की नाईं पत्थर का जान पड़े। परन्तु पलस्तर की विशेष सम्भावना है, क्योंकि यह कुछ असंभव सा जान पड़ता है कि इसमें के सारे पत्थर गिर कर नष्ट हो गए हों ग्रैार हज़ारों में से एक भी नाम मात्र के लिये न बचा हो। इसके नीचे के भाग में बाहर की ग्रोर उभड़े हुए आठ खण्ड बने हैं, ग्रैार इन प्रत्येक खण्डों की चैाड़ाई २१ फ़ीट ६ इञ्च है। इन खण्डों में अर्द्धगोलाकार आले बने हुए हैं, जिन में ऐसा अनुभव होता है कि किसी समय बुद्ध की मूर्ति स्थापित रही होगी। किसी किसी जर्जरित प्रतिमाग्रों के, जो बच गई हैं, देखने से जान पड़ता है कि इन प्रतिमाग्रों के हाथ वक्षस्थल तक उठे हुए होंगे, ग्रैार दाहिने हाथ का अंगुष्ठ ग्रैार तर्जनी बांएं हाथ के कनिष्ठ पर रख छोड़ी थी, जिससे यह आशय जान पड़ता है कि वह अपनी युक्ति को प्रमाणित करने की प्रेरणा कर रही हैं। इन आलों में ऐसा अनुमान किया जाता है कि बुद्ध की मनुष्य परिमाण प्रतिमा रही होगी।

पश्चिमी खण्ड में आले के नीचे पुष्प ग्रैार पल्लव के चित्र बने हुए हैं, ग्रैार इनके मध्य में एक पट्टिका जड़ी हुई है, जो कदाचित इस अभिप्राय से लगाई गई हो कि इस भवन का नाम ग्रैार उसके निर्माण का समय खुदवा दिया जाय। धमेख के चारों ग्रोर आलों के नीचे नीचे चित्र ग्रैार अलङ्कारादि की तेहरी पंक्ति बनी हुई है। इनमें से मध्य की श्रेणी में, जो सबसे अधिक चैाड़ी है, कि क्षेत्र चित्र बने हुए हैं। ऊपरवाली श्रेणी सब से कम चैाड़ी है, ग्रैार इसमें कमल की लताएं बनी हुई हैं। दक्षिण के खण्ड में कमल के पुष्प पर एक चकवा बैठा हुआ है, ग्रैार मध्य में एक मनुष्य कमल की लताग्रों को हाथ में लिए उसके पुष्प पर बैठा है। इसके दोनों ग्रोर कमल के एक पुष्प हैं, ग्रैार इन पुष्पों पर राजहंस की जोड़ी बनी है। इन के ऊपर मण्डूक का चित्र बना हुआ है। इन पक्षियों के भाव अति मनोहर हैं, ग्रैार मनुष्य का भाव अत्यादरयुक्त ग्रैार सुन्दर देख पड़ता है। कमल की लता अपनी लहलहाती ग्रैार ललित टहनियों, कोमल कलियों ग्रैार खिले पुष्पों सहित अति सुन्दर देख पड़ती है* इस स्तूप का उपरी भाग बड़ी जर्जरितावस्था में है। इसके शिखर पर घास पात उगे हैं, ग्रैार एक वृक्ष भी देख पड़ता है। यह स्तूप स्थूल है, परन्तु मध्य में केन्द्र के पास एक छोटी कोठरी है, ग्रैार उसके अन्तर से एक संकीर्ण धूमनाली ऊपर तक बनी हुई है, जिसमें से आकाश देख पड़ता है। इस कोठरी में जाने के लिये एक संकीर्ण मार्ग बना हुआ था।

एक खण्ड की चैाड़ाई ३६ फ़ीट ६ इञ्च है, जिसे आठ से गणना करने से २९३ फ़ीट होती है, जो इस स्थूल स्तम्भ की परिधि है।

सारनाथ के खण्डहरों के खोदने ग्रैार उसकी अन्तरङ्ग बातों के जानने की उत्कट कामना प्रारम्भ से ही एतद्देशीय तथा विदेशीय विद्वानों को समान रूप से रही है, इसी हेतु कई एक प्रसिद्ध अङ्गरेज़ों ने इसे खुदवा के अनेक अन्वेषण किए हैं। इनमें जेनरल केनिङ्गहैम, मेजर किटो ग्रैार मिस्टर ई. टामस ग्रैार डो. एफ. हाल के नाम मुख्य हैं। परन्तु इनमें भी कनिङ्गहैम का परिश्रम सबसे अधिक बहुफलप्रद सिद्ध हुआ है। वह अपनी रिपोर्ट † में लिखते हैं कि "मैं एक बेर इन्हीं खण्डहरों में एक स्थान पर खुदवा रहा था कि कोई

* Mr. Sherring's Benares

† Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. XXXII.

१०½ फीट की गहराई पर मुझे एक अभिलिखित पत्थर मिला, जो २८ इञ्च लम्बा, १३ इञ्च चौड़ा और ४ इञ्च मोटा था। यह पत्थर इस समय बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी के म्युज़ियम में है। इस शिलालेख पर संस्कृत के कुछ शब्द लिखे थे, जिसका अर्थान्तर मि. हैाजसन ने यों किया है कि संसार के "यावत कार्य्य का कोई कारण होता है; इन कारणों का बुद्ध ने भली भांति निरूपण किया है। उस महान श्रमण ने जीवन से मुक्ति पाने के कारण भी बताए हैं"। इस शिलालेख के अक्षर बहुत ही स्पष्ट हैं।

ऐसे ही एक बेर खुदवाते हुए इन्हें एक गृह की छत सी दृष्टिगोचर हुई। कुछ अधिक खुदवाने पर वह छत एक छोटे जलाशय के तट से जा लगी। फिर इस आंगन के चारों ओर दुहरे खंभों के आधार मिले, और इनके बीच कतवार में एक धुन्धले रंग का पत्थर मिला जिसपर बुद्धदेव की निर्वाण के समय की प्रतिछाया बनी हुई थी। यह पत्थर इस समय कलकत्ते के म्युज़ियम में है। इस प्रतिछाया में महात्मा बुद्ध के शय्या को चारों ओर अनुचर जन खड़े हैं,—कोई तो मृतक शरीर पर छाता लगाए है, कोई भक्तिपूर्वक उन के चरण धरे हुआ है। इनके अतिरिक्त नवग्रह तथा अष्ट शक्ति के चित्र भी बने हुए हैं"। ऐसे ही इन्हें एक बेर कोई १०० मूर्तियां और प्रतिछाया मिली थीं, जिन्हें इन्होंने कलकत्ते की एशियाटिक सोसायटी में भेज दिया था।

मिस्टर ई. टामस (बनारस के जज थे) और डाक्टर एफ. हाल को भी बहुत सी मूर्तियां और शिलालेख मिले थे, जिनमें से कुछ तो इन महाशयों ने एशियाटिक सोसायटी में भेज दिया और कुछ मुर्तियां बनारस कालिज में रक्खी हुई हैं।

सन् १७९४ ई० में बाबू जगतसिंह ने एक बड़े स्तूप को गिरवा डाला था। गिराती समय मजूरों को संगमर्मर के दो बर्तन मिले, जो एक दूसरे के भीतर रक्खे थे। भीतर वाले बर्तन में मनुष्य की कुछ हड्डियां थीं, और साथ ही कुछ मोती, सोने की पत्तियां, और रत्न थे। इसी स्थान में उन्हें बुद्धदेव की एक मूर्ति मिली थी, जिसपर संवत् १०८३ (अर्थात् १०२६ ई०) खुदा हुआ था।

११वीं वा १२वीं शताब्दी में जब भारतवर्ष से बौद्धमतावलम्बी निकाल दिए गए और उनके स्थान इत्यादि फूंक दिए गए, तो ऐसा जान पड़ता है कि उन सभों ने बुद्ध की मूर्ति और शिलालेख इत्यादि भूमि में गाड़ दिए, फिर इन खण्डहरों में स्थान स्थान पर राख के ढेर का मिलना भी इस बात को पुष्ट करता है।

जेनरल कनिङ्गहैम, मेजर किटो और मिस्टर टामस के अन्वेषण ने यह सिद्ध कर दिया है कि धमेख और चौखण्डी के बीच किसी समय मठ तथा दुसरी इमारतें होंगी। वे यह कहते हैं कि इन मठों के नीचे ऐसी दिवारें और इमारतों की नेव मिली हैं जिससे यह जान पड़ता है कि किसी प्राचीन इमारतों के खण्डहर पर ये मठ इत्यादि बने थे। इनमें कुछ मूर्तियां और प्रतिछाया ऐसी मिली हैं जिनपर ५वीं और ६ठी शताब्दी के अक्षर खुदे हुए हैं। इनमें एक विचित्र बर्तन एक बेर मिला, जिसे चैत्य कहते हैं। यह बर्तन मिट्टी का था। इसके नीचे का भाग तो सपाट था, परन्तु ऊपर नोकीला था। जब उसका पेंदा उससे पृथक कर दिया गया तो उसमें से मिट्टी की एक मोहर वा मुद्रा निकली * जिस पर ६ठी शताब्दी के अक्षरों में बौद्ध-धर्म-विषयक कुछ वाक्य खुदे हुए थे।

अब तक यह सारनाथ का स्थान वर्तमान है। वर्ष में एक बेर यहां मेला भी लगता है और विलायती अथवा बौद्धधर्मावलम्बी यहां जब कभी काशी आते हैं तो अवश्य जाते हैं। लार्ड कर्ज़न जिस समय काशी आए थे तो इस स्थान को देखने गए थे। उन्हें यहां की अवस्था देखकर दुःख हुआ था।

* See Monumental Antiquities and inscriptions, Vol. II.

अब यहां पर उनकी आज्ञा से एक कैरोगेटेड आयरन का छप्पर पड़ गया है, जिसके नीचे टूटी फूटी मूर्तियां आदि बटोर कर रख दी गई हैं। सुनने में आता है कि इस स्थान की दशा के लिये कुछ और भी प्रबन्ध होगा। वास्तव में अब तक इस स्थान को देखकर हृदय के भाव कुछ और ही हो जाते हैं और उस समय का स्मरण आने लगता है जब वहां सुन्दर नगरी बसी हुई थी और बौद्धों का निवासस्थान था। क्रूर काल ने किसीको नहीं छोड़ा, भला ये स्थान क्यों बचने लगे थे!

महिषशतक की समीक्षा

हमारे "बलीवर्द" "और गर्दभ काव्य" को देखकर कई लोगों ने अप्रसन्नता प्रकट की। इस प्रकार की कविता लिखना उनके मन में वाणी का असत्प्रयोग करना है। कविता का मुख्य उद्देश्य मनोरञ्जन और प्रमोद-दान है। चाहे जिस विषय का कवित्व हो, यदि उससे चित्त चमत्कृत और हृदय प्रफुल्लित हुआ, तो यह समझ लेना चाहिए कि कवित्व सफल हो गया। हय गजादि का वर्णन अनेक कवियों ने किया है। शिशुपालवध में माघ ने ऊंटों तक का वर्णन किया है। इस प्रकार की कविता को हम दूषित नहीं समझते। जिस कविता पर, आज, हम यह निबन्ध लिख रहे हैं, उस कविता ने आज तक बनी हुई पशुवर्णनात्मक सारी कविताओं को मात किया है। इसका नाम "महिष शतक" अथवा "माहिषशतक" है। इसमें भैंसे की स्तुति है।

२—"महिषशतक" के कर्ता बाल नामक एक महाविद्वान् थे। महाविद्वान् हम इनको इसलिये कहते हैं, क्योंकि इनकी कविता में इनकी अलौकिक विद्वत्ता का साक्ष्य प्रायः प्रति पद्य में मिलता है। दो दो अर्थ वाले अनेक श्लोक लिखकर, इन्होंने भैंसे को कवि, तार्किक, वैय्याकरण, मीमांसक, योगिराज, भूगोल, दिक्पाल, मुनि, गृहस्थ, देवता, दैत्य, समुद्र, पर्वत, रामायण, महाभारत आदि सभी कुछ सिद्ध किया है! यहां तक कि भैंसे में परब्रह्म का भी आरोप किया है!! इस प्रकार का व्यापार अप्रतिम प्रतिभा और असामान्य विद्वत्ता के बिना सर्वथा असाध्य है। बाल कवि ने "महिष शतक" लिख कर, काव्यप्रकाश-कर्ता की "नियतिकृत नियम रहितां" इस उक्ति की यथार्थता प्रमाणित कर दी है।

कवियों को ऐश्वरीय नियमों का बन्धन नहीं होता। वे अपनी एक स्वतन्त्र ही सृष्टि की रचना किया करते हैं। नाल और पत्तों के बिना कमल नहीं होता; और जब होता है तब जल ही में होता है। इस प्राकृतिक नियम की ओर कविजन दृक्पात तक नहीं करते। उनका कमल कामिनियों का कोमल मुख है। चन्द्रमा को कविजन चन्द्रमा ही नहीं कहते; वे कहते हैं कि आकाश-गङ्गा में खिला हुआ वह एक बृहदाकार सरोरुह है! बाल कवि भी भैंसे को भैंसा नहीं कहते; वे उसे सर्वदेव मय, ईश्वरावतार, सर्वशास्त्र पारङ्गत, राजाओं का भी राजा मानते हैं!! कवियों की स्वतन्त्रता का यहां अन्त है। इस प्रकार की भी विलक्षण कविताएं जब संस्कृत में विद्यमान हैं, तब, कारण वश, यदि हम "बलीवर्द" सदृश पद्य लिख डालें तो कोई आश्चर्य्य नहीं। इस संसार में जितने काव्य आज तक हुए हैं, वे सब उन उन कवियों के अन्तःकरण के व्यक्त-स्वरूप किम्वा चित्र समझने चाहिएं। इन कविता-चित्रों के भाव और कौशल को देख कर इनके निर्माता कवियों की स्थिति, विचार, अन्तरङ्ग रहस्य और काव्य करने के कारण आदि का बहुत कुछ पता लग जाता है; और उनके अन्तःकरण से अपने अन्तःकरण का समीकरण करने से उन्हींके से विकारों का तत्क्षण अनुभव होने लगता है। बाल कवि को चोल देश के राजा के अधिकारियों ने बहुत पीड़ित किया था। उनपर कवि ने वाक्यरूपी तीक्ष्ण-बाण-वर्षा की है। कवि की खेदोक्तियों को

सुन कर उसके साथ सहानुभूति और चोल-राज तथा उसके अधिकारियों पर घृणा हुए बिना नहीं रहती।

३-बाल कवि कब हुए और कब उन्होंने "महिष शतक" बनाया, यह उन्होंने नहीं लिखा। शतक का दूसरा श्लोक यह है —

ये जाता विमलेऽत्र भोसलकुले सूर्येन्दुवंशोपमे।
राजानश्चिरजीविनश्च सुखिनस्ते सन्तु सन्तानिनः॥
ये तद्वंशपरम्पराक्रमवशात् सभ्याः समभ्यागता-
स्ते सन्तु प्रथमानमानविभवा राज्ञां कटाक्षोर्म्मिभिः॥

अर्थात् चन्द्र और सुर्य-वंश के समान विमल इस भोसलवंश में जो राजा उत्पन्न हुए हैं वे आयुष्मान्, सन्ततिमान् और सुखी रहें। वंश परम्परा-क्रम से जो उनकी सभा के सभ्य हैं, उनपर राजाओं को कृपा बनी रहै और उनका मान तथा वैभव सदैव बढ़ता रहै।

ग्रन्थ के अन्त में भी कवि ने भोसल नरेश को आशीर्वचन कहा है। इससे यह विदित होता है कि जिस समय नागपुर में भोसलों का राज्य था, उसी समय बाल कवि विद्यमान थे।

४-"महिष शतक" की सुबोधिनि नामक एक टोका है। इसे श्रीनिवास पण्डित ने शक १७१६ को वैशाख कृष्ण षष्ठी को समाप्त किया है। यह उन्होंने अपनी टीका के अन्त में लिखा है। इस टीका को बने केवल २७ वर्ष हुए। यद्यपि यह बहुत आधुनिक है, तथापि इसकी प्रत्येक पंक्ति में लिखनेवाले का पाण्डित्य झलकता है। इसी टीकाकार ने लक्ष्मी सहस्र, भारत चम्पू और भैष्मो परिणय चम्पू की भी टीका लिखी हैं। श्रीनिवास के पिता का नाम कृष्ण, पितामह का रामचन्द्र और प्रपितामह का सिद्धेश्वर योगिराज था, यह भी इन्होंने टोका में लिखा है। अपने विषय में ये यह लिखते हैं —

तत्सुतः श्रीनिवासोऽहं रामपादाब्जषट्पदः।
साहित्यशास्त्रनिष्णातो वेदवेदांगपारगः॥

जिससे सिद्ध होता है कि ये रामोपासक थे। ये अपने ही मुख से अपने को साहित्य में निष्णात और वेद वेदाङ्ग में पारङ्गत कहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये परम पण्डित थे। इनकी बनाई हुई टीकाएं इसकी प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इनके प्रपितामह कोल्हापुर में रहते थे और शिव छत्रपति के गुरु थे। श्रीनिवास पण्डित के लिये, यहां पर, यद्यपि हमने भूतकाल का प्रयोग किया है, तथापि हमको यह विदित नहीं कि वे इस समय जीवित हैं अथवा नहीं। यह भी हमको विदित नहीं कि किस नगर में उन्होंने यह टीका लिखी। टीका समाप्त होने के एक ही महीने के अनन्तर "महिषशतक" पूना के "जगद्धितेच्छु" यन्त्रालय से निकला है, जिससे यह सूचित होता है कि उस समय श्रीनिवास पण्डित पूना ही में, अथवा वहीं कहीं, उसीके आस पास थे। "महिषशतक" के विषय में जो आख्यायिका हम सुनते आए हैं, उसकी पुष्टि श्रीनिवास पण्डित ने अपनी टीका की भूमिका में की है। उसका संक्षिप्तसार हम नीचे देते हैं।

५-भोसलों की राजधानी नागपुर में एक श्रोत्रिय ब्राह्मण का बालक बाल कवि नामा था। यह बाल कवि यथार्थ ही बाल कवि था। सोलह ही वर्ष के वय में यह अनेक विद्याविशारद हो गया था। एकबार चोल देशान्तर्गत श्रीरङ्गपत्तन का राजा नागपुर आया। वहां भोसला राजा की सभा में बाल कवि की चातुरी और विद्या देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और भोसलाधीश से बाल कवि को अपने साथ ले जाने की इच्छा उसने प्रकट की। नागपुर के राजा ने, उसकी इच्छा पूर्ण की। चोलाधिप बालकवि को अपनी राजधानी में लाए। वहां अपनी सभा में, अपने नगर के समस्त विद्वानों को बुलाकर, बाल कवि के साथ राजा ने शास्त्रार्थ कराया। शास्त्रार्थ में बाल कवि की जीत हुई। तब से बाल कवि चोलनरेश के यहां तक प्रेमपात्र हुए कि राज-मन्त्रियों तक को वे तृणप्राय

समझने लगे। यह बात मन्त्रिमण्डल और उन परास्त हुए पण्डितों को बहुत बुरी लगी। उन लोगों ने परामर्श करके, एक दिन राजा को एकान्त में पाकर, बाल कवि के प्रतिकूल अनेक बातें कहकर, राजा का चित्त कवि की ओर कलुषित कर दिया। उन्होंने यहां तक बातें बनाईं कि यह कवि आपको मारकर आपका सिंहासन छीन लेना चाहता है। राजा ने इस जाल को सत्य समझ कर बाल कवि को अपनी राजधानी से निकाल दिया। निकाले जाने पर बाल कवि ने जीविका के लिये एक ऐसी वृत्ति ग्रहण करनी चाही जिसमें श्रीमान राजमन्त्री और विद्वान् पण्डित दोनों का उनसे द्वेष रखने का अवसर न मिले। उन्होंने कृषकवृत्ति अवलम्बन करने का निश्चय किया और भैंसे मोल लेकर वे कृषी करने लगे। कृषी में बहुत अन्न हुआ। यह समाचार जब उनके शत्रुओं को मिला तब उन्होंने वह सब धान्य हरण कर लिया। इसपर बाल कवि बहुत कुपित हुए; परन्तु उन लोगों को और कोई दण्ड न दे सकने के कारण भैंसे की स्तुति के मिष उन्होंने उनको भैंसे से भी भद्दा बना दिया।

यह "महिषशतक" के निर्म्माण होने का कारण है। चोल देश के राजा और उसके अधिकारी सूबेदारों को बाल कवि ने जो धिक्कारा है, उससे तथा उनके धन धान्यादि के लुटजाने के विषय में "महिषशतक" में जो उन्होंने उल्लेख किया है, उससे भी इस आख्यायिका की सत्यता प्रमाणित होती है।

६–यहां पर यह शङ्का हो सकती है कि जब चोलेश्वर ने बाल कवि का अनादर किया, तब वे अपने पूर्वाश्रयदाता भोसलानरेश के यहां क्यों न चले आए? खेती क्यों करने लगे? इसका कारण या तो यह होगा कि अनादृत होकर श्रीरङ्गपत्तन से नागपुर लौट जाना उन्होंने लज्जाजनक माना; या वहीं उनको चोलनरेश ने पहले कुछ भूमि दे रक्खी होगी; जिसे छोड़ लौट जाना उन्होंने अनुचित समझ कर, अपनी ही भूमि में वे कृषी करने लगे। क्या आश्चर्य्य है जो राजा के अधिकारियों से दुःखित होकर पीछे से वे नागपुर चले भी आए हों।

७–दूसरे पेशवा बाजीराव के समय में अर्थात् १७४० ई० के लगभग, भोसलों का आधिपत्य नागपुर में हुआ और १८५३ ई० तक बना रहा। १८५३ ई० में नागपुर अङ्गरेज़ी राज्य में मिला लिया गया। अतः १७४० ई० के अनन्तर और १८५३ ई० के पहले बाल कवि का होना सिद्ध है। परन्तु श्रीरङ्गपत्तन पर हैदरअली और टीपू का प्रभुत्व १७९९ ई० तक था, इसलिये १७४० और १७९९ ई० के मध्य बाल कवि का चोलदेश को जाना अनुमान करना अनुचित है। हैदर और टीपू के सदृश अकृतविद्य, कट्टर और मराठों के महाशत्रु के यहां उनका रहना नितान्त असम्भव है। टीपू के अनन्तर श्रीरङ्गपत्तन का सिंहासन कृष्णराज को प्राप्त हुआ था। इस राजा का राज्य प्रबन्ध अच्छा न था। इसके समय में इसके कर्म्मचारियोंही का विशेष प्राबल्य था। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इसीके यहां बाल कवि रहे होंगे और इसीके सूबेदारों ने उन्हें सताया होगा।

८ "महिषशतक" के छठे पद्य में बाल कवि कहते हैं:—

नानाजीप्रभुचन्द्रभानुशहजीन्द्रान्दरायादयो।
विद्वांसः प्रभवो गतः श्रितसुधासुन्दोहजीवातवः॥
विद्यायां विषबुद्धयो हि वृषुलाः सभ्यास्त्विदानीन्तनाः।
किं कुर्वेऽम्ब! कृषे! व्रजामि शरणं त्वामेव विश्वावनीम्॥

अर्थात्—सुधा के समान जीवन के ओषधि रूप नाना जी, चन्द्रभानु, आनन्दराय आदिक विद्वान् प्रभु अब नहीं रहे। आजकल के दुःशील अधिकारी ऐसे हैं जो विद्या में विष की भावना करते हैं। सारे संसार की पालनकर्त्री हे मा कृषे! इसीलिये हम तेरी शरण आए हैं। करें क्या?

इस श्लोक में उल्लिखित नाना जी, पेशवाओं के प्रसिद्ध प्रधान नाना फड़वीस जान पड़ते हैं।

वे बड़े ही गुणग्राही थे। १७९७ ई० में वे अहमद-नगर में कैद किए गए और १७९९ ई० में वे मरे। नन्दिराय अथवा नन्दिराज नामक मैसूर के राजा का एक प्रधान था। इसीके हाथ से हैदर अली ने राज्यछत्र छीना था। बाल कवि का आनन्द राय सम्भवतः यही होगा। १७६१ ई० में यह अधिकारच्युत हुआ था। इन दोनों पुरुषों के लोकान्तरित होने पर कवि ने महिषशतक बनाया है, क्योंकि ऊपर दिए गए श्लोक में यह स्पष्ट लिखा है कि, ये लोग अब नहीं रहे। अतएव यह निभ्रान्त है कि बाल कवि ने इस शतक की रचना १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में की है अर्थात इनको हुए अभी १०० वर्ष भी नहीं हुए।

९—"महिशषतक" के १८वें श्लोक में श्रीधर और अम्बुदीक्षित और २०वें में कुट्टि नामक कवियों के नाम आए हैं। वहां के वर्णनक्रम से, इन कवियों की, बाल कवि के समय, विद्यमानता द्योतित होती है। परन्तु ये तीनों कवि कहां हुए और कहां रहे, इसका पता नहीं लगता। श्रीधर से श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी से शायद अभिप्राय हो। ७४वें श्लोक में भैंसे की समता कवि ने चन्दा खां से की है; परन्तु इस चन्दा खां की भी कोई वार्ता विदित नहीं।

१०—बाल कवि बहुत अर्वाचीन हैं; परन्तु इनकी कविता में अर्वाचीनता का चिन्ह नहीं है। इनकी कविता प्राचीनों की सी बहुत ही सरस और सरल है। "महिषशतक" में इन्होंने अपने पाण्डित्य की पराकाष्ठा दिखलाई है। ३० से लेकर ८५ श्लोक तक जो कुछ इन्होंने कहा है। सब दो दो अर्थों से गर्भित कहा है। भैंसे ऐसे निन्द्य पशु में दैत्य, देवता, तपस्वी, गृहस्थ, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि सभी का तादात्म्य दिखला देना अलौकिक प्रतिभा का परिचायक है।

इस शतक में १०७ पद्य शार्दूलविक्रीड़ित वृत्त में हैं। पहले के १४ पद्यों में भूमिकास्वरूप काव्य करने के कारण इत्यादि का विवरण है। १५ से २९ तक और ८६ से १०५ श्लोक तक भैंसे की सामान्य प्रशंसा और राजाओं तथा उनके आश्रित अधिकारियों की निन्दा है। १०६ में भोसलों को आशीष और १०७ में ग्रन्थ समाप्ति, स्वनाम-निर्देश आदि है। बीच के ३० से ८५ श्लोक पर्यन्त जो कुछ है विलक्षण है। जिस भैंसे को कानपुर की सड़कों पर गाड़ी खींचते देख करुणा आती है, वह वहां रावण के समान गम्भीर गर्जन कर रहा है; कर्ण के समान दान दे रहा है; अर्जुन के समान बाण चला रहा है; इन्द्र के समान सिंहासनासीन होकर सुख भोग कर रहा है और मुनियों के समान ध्यान में निमग्न हो रहा है! कभी वह मीमांसक बनता है, कभी तार्किक, कभी वैय्याकरण, कभी वेदपाठी, कभी ज्योतिर्विद् और कभी कालिदास का प्रतिद्वन्द्वी महाकवि!! हमारे महिषासुर के पुण्यवान् पुत्र किस श्लोक में किसकी समता धारण कर रहे हैं, यह हम सविस्तर लिखते हैं। देखिए—

श्लोकाङ्क	जिससे समता की गई है उसका नाम	श्लोकाङ्क	जिससे समता की गई है उसका नाम
३०,३१,३२	राजा	५०	विट
३३	बालक	५१	भरताचार्य्य
३४	दुष्टों के दण्डदाता	५२	मत्स्यावतार
३५	यजुर्वेदाध्यायी	५३	कूर्म्मावतार
३६	मध्वाचार्य्य	५४	वाराह
३७	रामानुज	५५	नृसिंह
३८	महायोगीश्वर	५६	वामन
३९	दीक्षित	५७	परशुराम
४०	परब्रह्म	५८	राम
४१	इन्द्र	५९	बलराम
४२	मन्मथ	६०	कृष्ण
४३	शालग्राम	६१	बौद्ध
४४	समुद्र	६२	कल्की
४५	हनूमान्	६३	शङ्कर
४६	कार्तवीर्य्यार्जुन	६४	पर्वत
४७	सुकवि	६५	अनेक प्राचीन
४८	सत्कविकृत-प्रबन्ध		राजाओं का समूह
४९	रसिक	६६	अर्जुन

श्लोकाङ्क	जिससे समता की गई है उसका नाम	श्लोकाङ्क	जिस से समता की गई है उसका नाम
६७	कर्ण	७७	मीमांसक
६८	भारत की कथा	७८	ग्रन्थरूप
६९	द्रोण	७९	नवरसरूप
७०	कपिशताकार	८०	अष्टदिक्पाल
७१	बालि	८१	सुवर्ण
७२	लङ्का	८२	मुनि
७३	रावण	८३	रोगी हो कर
७४	चन्दा ख़ाँ		दृढ़ाङ्गधारी
७५	महावैय्याकरण	८४	गृहस्थ
७६	तार्किक	८५	महिषासुर

भैंसे! तू बड़ा भाग्यशाली है!

११–ग्रन्थारम्भ में बाल कवि कहते हैं—

"सब संसार का कल्याण हो; मनस्ताप से सन्तप्त सज्जन सुखी रहैं; राजा लोग सुपथ पर चलैं; उनके धर्म्मिष्ठ मन्त्री दीर्घायु हों! भोसल वंश के भूपाल चिरजीवी हों ग्रैार उनकी सभा के सभ्यों का मान बढ़ै! अधर्म्म से धान-धन्य सम्पादन करने वाले ग्रैार राजा के समीप-स्थित लोगें को उत्कोच (रिश्वत) द्वारा वश करके प्रजा का सर्वस्व हरने वाले अधिकारी यमालय को जावें! इस चोल देश में जीविका का ग्रैार कोई मार्ग न देख कर जिन द्विजोत्तमों को महानुचित कृषी करनी पड़ी, उनको भी जो दुराचारी जन दुर्वचन कहते हैं उनका मुख क्रिमियों का निवासस्थान होवै!! वेद में कहा है कि कृषी से दुर्भक्ष नहीं होता ग्रैार आपत्ति में मनु ने भी कृषी करना दोषरहित माना है। इसीसे हम ने इस समय कृषी का ग्राश्रय लिया है। ईश्वर हमारी सहायता करै। कृषी का ग्राश्रय न लें तो करैं क्या? ग्राज कल के राजा तो केवल द्रव्यहरण करना जानते हैं, ग्रैार कुछ नहीं।

मधु से भी मीठी उक्तियों से इन लक्ष्मीलोलुप राजाग्रों की स्तुति करते करते जब हम थक गए, तब हमने वैश्यवृत्ति का ग्राश्रय लिया ग्रैार शत निष्क व्यय करने पर महिष नाम के प्रभु तक हमारी पहुंच हुई। इस नए प्रभु ने हमारी सम्यक् प्रकार से रक्षा की; ग्रतः ग्राज हम इसकी सहर्ष स्तुति करते हैं। जो जिसकी रक्षा करता है, वही उसका प्रभु है। इस श्रीमान् महिष ने हमारी स्पष्ट रक्षा की है। इसीलिये इसकी स्तुति करके हम ग्रपनी वाणी को सफल करना चाहते है। हमें पीड़ा पहुंचाने वाले ग्रैार हमारी महिमा को न जाननेवाले पुरुषों की जो हमने निन्दा की है, उसे सुन कर गुणग्राही राजा प्रसन्न होवें। भाग्यवानों के यहां ग्रनादर होकर कृषी द्वारा जो कुछ हमने सम्पादन किया था, उसे लूट ले जानेवाले सुबेदारों को ग्रधम भैंसे की स्तुति के मिष, जो हमने निन्दा की है ग्रैार उनको जो वाग्दण्ड दिया है, उसके लिये कवियों को निरङ्कुश माननेवाले विद्वान् हमैं क्षमा करैं"!

यह "महिषशतक" की भूमिका है। इस लिखने से यह विदित होता है कि उस समय मैसूर की राज्य-व्यवस्था बहुत ही बिगड़ गई थी, किसी का धन ग्रैार जीवन सुरक्षित न था।

१२—श्रीमान् महिषमहीप की कुछ महिमा सुनिए—

स्तोतुं त्वां महिषाधिराज सुगुणं दीदांसते धीर्मम ।
त्वञ्च स्तुत्यतया प्रबन्धवचसां योग्योऽसि किन्त्वन्वहम् ॥
वित्तोन्मत्तनरेन्द्रदुर्गुणघटामिथ्यास्तवोपक्रमै—
र्वाग्भिः पर्य्युषिताभिरद्यभवतः कुर्वे नुतिं क्षम्यताम् ॥

भावार्थ–हे महिषाधिराज! हम आपकी स्तुति तो करना चाहते हैं; परन्तु सर्व-गुण-सम्पन्न ग्राप बड़े बड़े ग्रन्थों में नई नई उक्तियों द्वारा वर्णन किए जाने योग्य हैं। धनोन्मत्त राजाग्रों की दुर्गुण-घटाग्रों का प्रतिदिन मिथ्या स्तवन करनेवाली ग्रपनी उच्छिष्ट वाणी से हम ग्राज आपकी स्तुति करते हैं, हमारा ग्रपराध क्षमा हो।

अष्टास्वभ्रमुवल्लभादिषु भवानेकस्त्वमत्रागतः ।
किम्वा जङ्गमतां गतः कुलगिरिष्वेकस्त्वमत्युन्नतः ॥
आहोस्विन्महिषासुरस्त्वमधुना हन्तावतीर्णः पुन—
र्ब्रूहि श्रीमहिषेन्द्र विस्मयकरं स्मेरं मदीयं मनः ॥

भावार्थ–आठ दिग्गजों में से क्या आप एक दिग्गज तो नहीं आगए ? अथवा अत्यन्त ऊंचे महेन्द्रादि सात विख्यात पर्वतों में से एक आपको चलने फिरने की शक्ति तो नहीं मिल गई ? किम्वा आपके रूप में कहीं उस महिषासुरने फिर तो अवतार नहीं लिया ? हे महिषेन्द्र ! हमारे प्रश्नों का उत्तर दीजिए, हमको बड़ा विस्मय हो रहा है ॥

मूर्ता किं तमसां छटा किमथवा नीलाचलो जङ्गमो ।
जीमूतः किमु सञ्चरिष्णुरवनौ पादैश्चतुर्भिर्युतः ॥
इत्येवं किल तर्कयन्ति मसृणत्वङ्मासलः श्यामलो ।
येषां सैरिभमण्डलेश्वर दृशः पन्थानमारोहसि ॥९०॥

भावार्थ–हे भैंसों के मण्डलेश्वर ! चिकनी त्वचा वाला आपका महा पीवर काला काला शरीर जिसके नेत्रों के सम्मुख आ जाता है, उसे यह भ्रम होता है कि यह अन्धकार की मूर्तिमती छटा तो नहीं ? किम्वा गमनशील नीलाचल पर्वत तो नहीं ? अथवा पृथ्वी पर चार पैरों से चलने वाला महामेघ तो नहीं ?

भ्रातः सञ्चर मा बहिर्बहुतरव्याहारचूड़ामणे ।
त्वामालोक्य समुन्नताकृतिधरं सञ्चारिणं भीषणम् ।
कोऽप्येष क्षितिभृत्क्षितौ पुनरसावित्याग्रहोदग्रधी-
र्दम्भारिस्तव दम्भनाशनकृते दम्भोलिमुत्तम्भयेत् ॥९१॥

भावार्थ–बहुत खानेवालों के बाबा, भाई महिष ! आप बाहर न निकला करें । इधर उधर फिरनेवाले आपके भयङ्कर भूधराकार रूप को देख कर इन्द्र को कहीं, यह भ्रम न हो जावै कि कोई पक्षधारी पर्वत फिर पृथ्वी पर आगया ! ऐसा भ्रम हो जाने से आपके दम्भ को दूर करने के लिये कहीं उसे अपना वज्र न उठाना पड़े !!

त्वं बद्धोसि हि मद्गुणैर्दृढमहं बद्धोऽस्मि च त्वद्गुणै-
स्त्वं मां रक्षसि कासराधिप सखे रक्षामि च त्वामहम् ॥
इत्यन्योन्यकृतोपकारमुदितावावामिह द्वावपि ।
स्थास्यावः शरदां शतं द्रुतममी नश्यन्तु नः शत्रवः ॥२४॥

भावार्थ–आप हमारे गुणों (रस्सी) से बँधे हैं और हम आपके गुण से बँधे हैं, आप हमारी रक्षा करते हैं और हम आपकी । इस प्रकार परस्पर उपकार द्वारा प्रसन्न होनेवाले हम दोनों सौ वर्ष तक जीते रहें; और हमारे शत्रुओं का शीघ्र ही नाश होवै !

१३–अब उन्मत्त राजाओं के विषय में बाल कवि की दो एक उक्तियां सुनिए—

विद्वन् मा कुरु साहसं शृणु वचो वक्ष्यामि यत्ते हितं ।
त्यक्त्वा कामदमत्र सैरिभपतिं निर्व्याजबन्धुं नृणाम् ॥
श्रीरङ्गाभिधपत्तनं प्रति सखे मा गा ज्वरस्यालयं ।
दूरे श्रीर्निकटे कृतान्तमहिषग्रैवेयघण्टारवः ॥१९॥

भावार्थ–हे विद्वन् ! हे सखे ! सुन; हम तेरे हित की बात कहते हैं । सारी कामनाओं के सिद्ध करनेवाले, मनुष्यों के अकारण बन्धु इस महिष नरेश को छोड़ कर महा सन्तापकारी श्रीरङ्गपत्तन नगर की ओर जाने का तू कभी साहस न कर । वहां धन प्राप्ति दूर; परन्तु यमराज के आगमन का सूचक उसके बाहन के गले की घण्टा का शब्द निकट है ।

न ब्रूषे परुषं न जल्पसि मृषावादान्न गर्वोन्नतिं ।
धत्से प्रत्युत लांगले विनियुतः सङ्क्लेशयित्वा वपुः ॥
मर्त्यानामनुपाधिजीवनकृते त्वं कल्पसे कासर ।
त्वय्येवं सति दुर्नृपाननुसरन् हन्तास्म्यहो वञ्चितः ॥२१॥

भावार्थः–आप न कभी कठोर वचन कहते हैं, न झूठ बोलते हैं, न किसी प्रकार का गर्व ही रखते हैं; प्रत्युत हल में जोते जाने पर, अपने शरीर को कष्टित करके, जीवों की जीविका सम्पादन करते हैं । ऐसे सर्व गुण-सम्पन्न आपके रहते, दुःशील राजाओं की सेवा करके हम अवश्य ठगे गए !

तिष्ठन्तु क्षितिपा धनान्धतमसप्राग्भारदूरीभवत्-
कृत्याकृत्यविवेकमत्तहृदया नैवाश्रये तानहम् ॥
एहि त्वं सरसीतटं तव वपुर्मूर्धाभिषेकं जलै-
रस्मत्संवसथावनाय करवै राजेव संरक्ष माम् ॥३०॥

भावार्थ–धन के मद से कृत्याकृत्य-विचार-हीन उन्मत राजा अपने घर बैठे रहें । अब हम उनके आश्रय की परवाह नहीं करते । आप हमारे साथ

तलैय्या के तट तक चलिए; अपने ग्राम के पालन-निमित्त, वहां, हम जल से आपका मूर्धाभिषेक करें। राजा के समान आप ही हमारी रक्षा कीजिए!

१४-मैसूर के सूबेदारों को बालकवि का दिया हुआ वाग्दण्ड देखिए—

देहं स्वं परिताप्य यद्धि भवता धान्यं धनं वार्जितं ।
तत्सर्वं प्रसभं हरन्ति हि सुबेदाराः स्वकीयं यथा ॥
हेतुस्तत्र किलायमेव महिष ज्ञातो मया श्रूयतां ।
पुत्रा एव पितुर्हरन्ति सकलं प्रेम्णा बलाद्वा धनम् ॥२६॥

भावार्थ-हे महिष! अपने शरीर को इतना परिताप पहुंचा कर, जो कुछ धन अथवा धान्य आपने उपार्जन किया है, उस सबको अपना ही सा समझ कर, ये सूबेदार बल पूर्वक हरण कर रहे हैं। इसका कारण हमने समझ लिया। सुनिए, बलात्कार अथवा प्रेम से पुत्र ही पिता का धन हरण करते हैं; यही कारण है जो ये आपका सर्वस्व लूट रहे हैं! अर्थात् ये लोग आपके लड़के (भैंसे) हैं!!

क्षुद्बाधां यदि यासि कासरपते तर्हीदमाकर्ण्यता-
मस्माभिर्हि तृणीकृतान् खलु सुबेदारान् सुखं भक्षय ॥
निःसारानपराधलेशरहितानितानकिञ्चित्करान् ।
घासान् भक्षयता त्वया कृषिमतां को वोपकारो भवेत् ॥२७॥

भावार्थ-हे महिषराज! यदि आपको क्षुधा लगी तो, हमारे द्वारा तृणवत् माने गए इन सूबेदारों को आप सुख पूर्वक खा जाइए। इन निरापराध, निःसार और तुच्छ कुश, काश आदि तिनकों को खाने में हमारे समान किसानों को भला आपसे क्या लाभ पहुंचेगा?

१५-"महिषशतक" में जो दो दो अर्थों से गर्भित श्लोक हैं उनको भाषा में अच्छे प्रकार समझाना कठिन है। तथापि दो एक के भावार्थ लिखने का प्रयत्न करके, हम इस निबन्ध की समाप्ति करेंगे। महिषासुर जी का 'सुकवि' होना देखिए—

उल्लेखान् विविधान् करोषि च पदन्यासस्तवान्यादृशः ।
पद्यालोकनदत्तदृष्टिरसि च प्रायः प्रबन्धे स्थितः ॥
कोशाधारतया स्थितश्चरसिक*प्राये स्थले सादर-
स्तेन श्रीमहिषाधिराज सुकविं त्वामेव मन्यामहे ॥४७॥

भावार्थ—कवि, नाना प्रकार के उल्लेखादिक अलङ्कारों की रचना करता है; आप भी (अपने सींगों से) अनेक उल्लेख (पृथ्वी पर रेखाएं खींचना) करते हैं। कवि, लोकोत्तर पदों की योजना करता है; आपकी भी पद-योजना (पाद-क्षेप) लोकोत्तर होती है। कवि, पद्यावलोकन (पद्य के देखने) में दत्तदृष्टि रहता है; आप भी पद्यावलोकन (पद्या='मार्ग के अवलोकन) में दत्तदृष्टि रहते हैं। कवि, प्रबन्ध (ग्रन्थ) के सहारे रहता है; आप भी प्रबन्ध (बन्धन) के सहारे रहते हैं। कवि को कोश (शब्दकोश) का आधार रहता है; आप को भी कोश (द्रव्यवान् घर) का आधार रहता है। कवि "रसिकप्राये स्थले सादरः" अर्थात् रसिक-युक्त स्थल से सादर स्नेह रखता है; आप भी "चरसि कप्राये स्थले सादरः" अर्थात् जलयुक्त स्थान ही में विचरण करते हैं। अतएव, हे महिषाधिराज! हम आपही को सुकवि मानते हैं।

१६-कृष्ण की साम्यता सुनिए:—

संप्राप्तः सहजं बलं भुवि महान् जातोऽसि कृष्णात्मना ।
कंसा†नन्दमहो सुखेन सरसः गृह्णासि गोपान्वितः ॥

* 'क' का अर्थ जल और 'चरसि' का अर्थ फिरना है। कवि के अर्थ में पदच्छेदः—(च) रसिकप्राये स्थले सादरः। महिष के अर्थ में पदच्छेदः-चरसि कप्राये स्थले सादरः। दोनों में अक्षर वही रहते हैं, परन्तु पदों का विश्लेषण करने से पृथक् पृथक् दो अर्थ निकलते हैं।

† इस श्लिष्ट वाक्य को हम हिन्दी में भली भांति नहीं दरसा सकते। संस्कृत में महिष के लिये ऐसा अन्वय होगा—

गोपान्वितः (सन्) अहो त्वं सरसः कं (जलं) सुखेन सानन्दं गृह्णासि।

और यदुनाथ के लिये ऐसा होगा—

गोपान्वितः (सन्) सुखेन सरसः (यदुनाथः) अहो कंसानन्दं गृह्णाति।

दोनों पक्षों में, इस श्लोक के दूसरे चरण के अक्षरों में साम्य है; परन्तु श्लिष्ट पदों को अलग अलग करने से जुदे जुदे दो अर्थ निकलते हैं।

नैकाभिर्महिषीभिरन्वहमपि क्रीडां विविस्से मुदा ।
तत्साक्षाद्यदुनाथ एव महिषाधीश त्वमालक्ष्यते ॥६०॥

भावार्थः—इस भूमण्डल में बल (बलराम) को सहज ही पाकर, कृष्ण की आत्मा द्वारा, यदुनाथ उत्पन्न हुए हैं; आप भी बल (शक्ति) को सहज ही में पाकर कृष्णात्मा (काले आत्मा के, काले रङ्ग के) उत्पन्न हुए हैं। मुख में सरसता को धारण करनेवाले यदुनाथ ने गोपालों से अन्वित हो कर कंस के आनन्द को ले लिया (नाश किया) है; आप भी गोपालों ही से अन्वित होकर मुख से तड़ाग के जल को सानन्द ग्रहण करते हैं। यदुनाथ ने अनेक महिषी गणों (रानियों के समूह) के साथ प्रतिदिन क्रीड़ा की है; आप भी अनेक महिषी गणों (भैंसियों के समूह) के साथ सदैव क्रीड़ा करते हैं। अतः हे महिषी के अधीश्वर! आप साक्षात् यदुनाथ (कृष्ण) दिखलाई देते हैं!

१७–दो अर्थ वाला बस एक और पद्य सुन लीजिए। महिष महाराज की, इसमें, अनेक कपियों से समता की गई है—

सुग्रीवोसि महान् गजोसि वपुषा नीलः प्रमाथी तथा ।
धूम्रश्चासि महानुभाव महिष त्वं दुर्मुखः केसरी ॥
इत्थं ते सततं महाकपिशताकारस्य साहाय्यतः ।
सीतां प्राप्य विलङ्घ्य दुःखजलधिं नन्दामि रामः स्वयम् ७०

भावार्थ—हे महानुभाव महिष! आप सुग्रीव (अच्छी ग्रीवावाले) हैं; शरीर से महागज (गजनाम का एक कपि भी हो गया है) हैं; प्रमाथी (प्रमाथी नाम के कपि तथा मथन करनेवाले) हैं; धूम्र (धूम्र नाम के कपि तथा धूम्रवर्णवाले) हैं; केसरी (केसरी नामक कपि तथा 'के' [जल में] 'सरी' [प्रवेश करने वाले] हैं, इस प्रकार कपिशताकारधारी (सैकड़ों कपियों के आकार तथा कपिश रङ्ग के आकार वाले) आपकी सहायता से सीता (जानकी तथा हल से विदीर्ण हुई भूमि) को पाकर दुःख रूपी जलधि को पारकर, स्वयं राम (रमण करने वाले) होकर हम आनन्द कर रहे हैं!

हम भी अब बालकवि को आनन्द करते छोड़, दो एक बातें और लिखकर, लेखनी को विश्राम देना चाहते हैं।

१८–नैषध के त्रयोदश सर्ग में दो दो अर्थवाले केवल पच्चीसही तीस श्लिष्ट श्लोक हैं; परन्तु "महिषशतक" में ऐसे ऐसे कोई ५६ श्लोक हैं। ये सब श्लोक अर्थद्वय से गर्भित होकर भी सरस हैं और सरल भी हैं। यह शतक कवियों की निरङ्कुशता का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। कवि सब कुछ करने में समर्थ हैं; वे चाहैं राई का पर्वत बना दें और चाहैं पर्वत की राई! इसीलिये बिल्हण कवि ने विक्रमाङ्कदेवचरित के अन्त में लिखा है हैं कि, कवियों से विरोध करना उचित नहीं; रुष्ट होने से वे बड़ों बड़ों की कीर्ति को धूलि में मिला देते हैं और प्रसन्न होने से अकिञ्चन जनों को भी इन्द्रासन पर आसीन कर देते हैं।

मनोहर छटा

नीचे पर्वत थली रम्य रसिकन मन मोहत।
ऊपर निर्मल चन्द्र नवल आभायुत सोहत॥
कबहुं दृष्टि सों दुरत छिपत मेघन के आड़े।
अन्धकार अधिकार तुरत निज आय पसारे॥
नवल चन्द्रिका छिटकि फेरि सब बनहिं प्रकाशत
निर्मल द्युति फैलाय बेगि तमपुंज बिनासत॥
प्रकृति चित्र की छटा होत परिवर्त्तित ऐसी।
चित्रकार की अजब अनोखी गति है जैसी॥
भई प्रकृति है मौन पौन हू सोवन लागी।
पशु पक्षी हू मनहुं दियो यहि जग कहं त्यागी॥
केवल कहुं कहुं झींगुर अरु झिल्ली झनकारत।
जलप्रपात रव मन्द मधुर झरनन कर आवत॥
कतहुं श्याम रङ्ग शिला कहूं थल कहुं हरियाली।
बहत मन्द परवाह युक्त झरना छबि शाली॥
कहुं बिकराल बिशाल शिला आड़त तेहि बेगहिँ।
उमगि उच्छलित होय तऊ धावत गहि टेकहिँ॥

जाय मिलत निज प्रिय सरिता सें कोटि यतन करि
प्रेमिन के पथरोधन को दरसावत दुस्तर ॥
राजत कतहुं भाड़िन की अवली तट ऊपर।
कतहुं खड़े दो चार जङ्गली वृक्ष मनोहर ॥
तिन सब कर प्रतिबिम्ब भांति जल मांहि लखाई।
देखन हित निज रूप प्रकृति दर्पन ढिग आई ॥
तरु मण्डप के रन्ध्रन बिच सें छनि छनि आवत।
शशि किरनन को पुञ्ज सरस शोभा सरसावत ॥
करत अलौकिक नृत्य आय निर्मल जल माहीं।
निरखि ताहि मन मुग्ध होय थिर रहत तहांहीं ॥
पहुंच दृष्टि की जात जहां तक दीसत याही।
शैल नदी तरु भूमि अटपटी औ कछु नाहीं ॥
निरखि लेहु एक बेर चहुं दिशि नैन पसारी।
मन महं अङ्कित करहु माधुरी छबि अति प्यारी ॥
इतहीं चिन्ता तजत आय जग के नर नारी।
इतहीं अनुभव करत सुक्ख सब दुःख बिसारी ॥
इतही प्रेम पियास बुझत प्रेमी गण की अति।
आय मिलत जब प्रेम प्रेयसी मन्द मधुर गति ॥

साहित्य समालोचना

(भाग २)

गत अगस्त की संख्या में तो भारतमित्र जी के सम्पादक महाशय ने जो कुछ अपनी ओर से हमपर कृपा की थी उसका उत्तर हुआ अब "पर्यालोचक" महाशय का जो "साहित्य समालोचना" नामक लेख उसी पत्र के खण्ड २३ संख्या ५१ (३१ दिसम्बर सन् १९००) और खण्ड २४ संख्या १ (५ जनवरी सन् १९०१) में प्रकाशित हुआ उसपर हमें यह वक्तव्य हैः—सब से पहिला तो हमारा प्रश्न यही है कि आप अपना नाम प्रकाशित करते क्यों डरते हैं, किसी ओट से कोई काम करना और विशेष कर विद्या विषयक, कदाचित् कोई भी श्रेष्ठ न बतलावेगा। आपके इस कथन से हम सहमत नहीं हो सकते कि "हिन्दी भाषा में उत्तम ग्रन्थकार और समालोचक दोनों का अभी अभावही है"। उनमें प्राचीन कवियों की तो गणना ही क्या करनी है, पर आधुनिक महाशयों ही में से स्वयं पण्डित श्रीधर जी पाठक, पण्डित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी, पण्डित मदन मोहन जी मालवीय बी. ए. एल. एल. बी., बाबू राधाकृष्ण दास जी, पण्डित राधा चरण जी गोस्वामी, पण्डित गङ्गा प्रसाद जी अग्निहोत्री, बाबू श्यामसुन्दर दास जी बी. ए., पण्डित किशोरीलाल जी गोस्वामी, बाबू कार्तिक प्रसाद जी खत्री, पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय, बाबू कृष्णबलदेव जी वर्म्मा, बाबू केशवप्रसाद सिंह जी, पण्डित अमृतलाल जी शर्म्मा, बाबू जगन्नाथ दास जी बी. ए., महता लज्जाराम जी, पण्डित माधव प्रसाद जी मिश्र, बाबू तोताराम जी वकील, मुंशी देवी प्रसाद जी, मुन्सिफ़ योधपुर, पुरोहित गोपीनाथ जी एम. ए., लाला सीता राम जी बी. ए. पण्डित युगुल किशोर जी मिश्र, पण्डित देवीदत्त जी त्रिपाठी, पण्डित भैरव प्रसाद जी (विशाल), इत्यादि इत्यादि अनेक परम विज्ञ ग्रन्थकार और सुलेखक वर्तमान हैं। तब न जानें आपने किस आधार पर उत्तम ग्रन्थकारों का अभावही बतला दिया। हां समालोचकों का एक प्रकार से कुछ कुछ अभाव सा कहा भी जा सकता है, पर इस प्रथा की हमारे यहां विशेष उन्नति नहीं थी, तो भी थोड़े बहुत उत्तम समालोचक भी होगही गए और वर्तमान भी हैं और उनकी संख्या दिन दिन वर्धमान ही होती जाती है, जैसा स्वयं आप कुछ आगे चलकर स्वीकार करते हैं। हां इस प्रसंग में "भारत मित्र" जी का पोथियों से आलोचना का विस्तार बढ़ जाने का भय हमें अवश्य स्मरण आता है। फिर आप लिखते हैं कि हमारी समालोचना पर जो आपने भारतमित्र के साढ़े तीन कालम रँगे वह केवल "प्रसङ्ग वशतः" आपने लिखा। वाहवा! अच्छा आपका "प्रसङ्ग वशतः" मुख्य लेख तो केवल एकही कालम के तृतीय भाग मात्र (४५

पंक्तियों हो) में समाप्त हो गया ग्रौर जो "प्रसङ्ग वशातः" लिखा गया उसका राम राम कर साढ़े तीन कालम (४०३ पंक्तियों के पश्चात्) ग्रन्त मिला !!! हम तो कहेंगे कि ग्राप हमारा ही लेख खण्डन करने को बैठे थे ग्रौर जिसे ग्राप ग्रपने लेख का मुख्य भाग कहते हैं वह हमारी समझ में केवल भूमिका मात्र प्रतीत होती है, ग्रस्तु ।

(१) "खण्डितोपमा दूषण" लीजिए ग्रब ग्राप के ग्रनुरोध से हम इस दोष को "स्पष्ट रूप से" दिखाते हैं—"हरि समान हरि कुमति निसातम सुमति प्रकासी" इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि (हे हरिश्चन्द्र ! तुमने) सूर्य के समान

(क) कुमति रूपी रात्रि के ग्रन्धकार का नाश कर ।

(ख) सुमति..............................का प्रकाश किया—

इसमें (ख) भाग में खण्डितोपमा है ग्रौर उससे बचने को उपरोक्त पद में ऐसे शब्दों की ग्रावश्यकता थी कि जिनका ग्रर्थ यह होता:—(हे हरिश्चन्द्र ! तुमने) सूर्य समान (क) कुमति रूपी रात्री के ग्रन्धकार का नाश कर (ख) सुमति रूपी दिन के प्रकाश का विस्तार किया। ऐसा ग्रर्थ होने से पद में दोनों चरणार्ध एकसे होते ग्रौर उपमा खण्डित न होती ।

पर्यालोचक जी के मतानुसार "इसमें एक प्रकार का "हेतुरूपक" ग्रलङ्कार है उपमा का प्राधान्य नहीं है यद्यपि वह गौण रूप में विद्यमान है ग्रतः खण्डितोपमा दूषण समालोचकों का भ्रम है। कोई कोई इसमें लुप्तोपमा समझते हैं, पर हमें तो रूपक जान पड़ता है" प्रथम तो हेतुरूपक का वर्णन भाषा के प्रसिद्ध ग्राचार्य्यों ने नहीं किया है। ग्रतः यह कविप्रणीत न होने के कारण प्रमाणित नहीं हो सकता है। कदाचित् पर्यालोचक महाशय हेतूत्प्रेक्षा के सम्भ्रम में पड़कर हेतुरूपक लिख गए हों। रूपक को उपमा से नितान्त प्रथक बतलाना भी स्वयं पर्यालोचक जी का भ्रम है। रूपक तो उपमा के ग्रन्तर्गत है। यथा—

ग्रलङ्कार में मुख्य हैं उपमा ग्रौर सुभाव
सकल ग्रलङ्कारन विषे दरसत इनको भाव
(देवजी)

ग्रौर पूर्णोपमा के उदाहरण प्रायः रूपक सेही देख पड़ते हैं—यथा

"फूलि उठे कमल से ग्रमल हितू के नैन
कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे
दौरि ग्राए भौंर से करत गुनी गुन गान
सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे
सुरभी सों खुलन सुकवि की सुमति लागी
चिरया सी जागी चिन्ता जनक के जियरे
धनुष पै ठाढे राम रवि से लसत ग्राजु
भोर कैसे नखत नरिन्द भए पियरे"
(रघुनाथ जी)

इसी प्रकार का पाठक जी का भी कवित्त है—परन्तु उपमा ग्रौर रूपक में भेद केवल इतनाही है कि रूपक में वाचक ग्रौर धर्म नहीं होते—यथा—

"उपमा अरु उपमेय सों वाचक धर्म मिटाय।
एकै करि आरोपिए सो रूपक कविराय" ॥
(दास जी)

सुतराम् रघुनाथ जी ग्रौर पाठक जी के कवित्त उपमालङ्कार से भूषित इसी कारण हैं कि इन दोनों में वाचक ग्रौर धर्म दोनो विद्यमान हैं ग्रतः ये रूपक कैसे हो सकते हैं? हमको ग्राश्चर्य है कि पर्यालोचक महाशय इसको रूपक कैसे कहते हैं! लुप्तोपमा इस कारण से यह नहीं है कि इसमें वाचक, धर्म, उपमेय, ग्रौर उपमान सभी प्रस्तुत हैं। परन्तु खण्डितोपमा हमने इस कारण कहा कि इसमें धर्म खण्डित है ग्रर्थात् उसका तारतम्य नहीं ठीक है। एतावता इसमें चार चरणों के स्थान पर केवल साढ़े तीन चरण हैं।

ऐसी अवस्था में खण्डितोपमा दूषण बतलाना हमारा भ्रम कैसे हुआ ?

(२) "मनोविनोद के २रे और ३रे भागों की न्यूनता" इसका निबटेरा तो केवल सहृदयता पर निर्भर है। "काव्य की प्रशस्यता" के विषय में हम पर्यालोचक" महाशय से पण्डित गङ्गाप्रसाद जी अग्निहोत्री द्वारा अनुवादित पण्डित विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूनकर कृत "विद्वत्व और काव्यत्व" तथा "समालोचना" नामक निबन्ध और बाबू जगन्नाथ दास (रत्नाकर) बी. ए. कृत "साहित्य रत्नाकर, काव्य निरूपण खण्ड" के अवलोकन करने का अनुरोध करते हैं। "मनोविनोद" के इन दोनों भागों में वैसे विलक्षण पद्य एक भी नहीं हैं जैसे प्रथम भाग में बाहुल्यता से वर्तमान हैं और जिनकी सविस्तर विवेचना हमारी समालोचना में प्रस्तुत है। हमने इन दोनों भागों की जो कुछ निन्दा की है वह अधिकांश में केवल आपेक्षक है। आप काव्य की प्रशस्यता केवल रस, भाव, और अलङ्कारों पर निर्भर करते हैं। इस विषय पर हमने अपने भाषा साहित्य विषयक लेख में बहुत कुछ लिखा है। सबसे प्रथम तो वाक्य की मधुरताही द्रष्टव्य है यथा।

"व्यंग्य जीव ताको कहत शब्द अर्थ है देह।
गुन गुन भूखन भूखनै दूषन दूषन एह" ॥
(कुल पति जी)

इन द्वितीय और तृतीय भागों में वाक्य मधुरता वैसी नहीं है जैसी कि प्रथम भाग में और हम कहने में किञ्चित् मात्र भी सङ्कोच नहीं करते हैं कि प्रथम भाग के घनाष्टक, घन विनय, जगत सचाई सार इत्यादि पद्यों का दशमांश सुन्दर भी गोपिकागीत के अतिरिक्त एक पद्य तक इन दो भागों में नहीं है और तृतीय भाग में समस्यापूर्ति ऐसे पद्य क्या वास्तव में उपहासास्पद नहीं हैं ? इसका सविस्तर वर्णन हम इसी लेख में करेंगे—

३—"ऊजड़ गाम में अनुवाद की अशुद्धियां"—इस विषय में हमारा पहिला प्रश्न तो यही है कि आपने अङ्गरेज़ी में कहां तक अभ्यास किया है ? "A breath can make them, as a breath has made." इस पूरी पंक्ति का भाव "अनुवाद ("फूंकहि मांहि वै बनत फूंकही सों मिटि जांहीं") की पंक्ति के पूर्वार्द्ध में कदापि नहीं भरा हुआ है। हम आपके इस कथन से सहमत हैं कि "सम्भव है कि यदि अंत्यानुप्रास का बन्धन न होता तो गोल्ड-स्मिथ भी पाठक जी ही की भांति निज पंक्ति का निर्माण करता"। पर इससे तो आपने स्वयं मान लिया कि गोल्डस्मिथ और पाठक जी की इस पंक्ति के आशय में विभिन्नता अवश्य है! अब "शुद्ध अनुवाद" में तो फेर आही गया। फिर आप कहते हैं कि "बनत रहत वै सदा एक फूंकहि के मांही" यह अनुवाद शुद्ध होता पर हमारी समझ में तो यह और भी अशुद्ध है "The county blooms—a garden and a grave !" इसके अनुवाद ("लसत देश कहुँ बाग कहूँ मरघट मय होई") को हमने जो अशुद्ध बतलाया सो भी बहुत ठीक बात है। मूल का आशय यह है कि "देश एकही स्थान पर एक साथ ही बाग और मरघट हो रहा है पर अनुवाद का यह भाव हो जाता है कि "देश का कुछ भाग बाग और कुछ मरघट प्रतीत होता है" इस पंक्ति का जो द्वितीय अनुवाद पाठक जी ने दिया है वह (लसत देश एक संग बाग अरु मरघट होई) अवश्य शुद्ध है परन्तु इनके भावों में अन्तर है और प्रथम अनुवाद में हम हिन्दी जाननेवालों के लिये द्वितीय की अपेक्षा कोई विशेष रोचकता नहीं देखते जिसके कारण वह अशुद्ध होने पर भी लिखा जाता। ये अशुद्धियां हम एक भी न बतलाते यदि "उजड़गाम" भी "एकान्तवासी योगी" की भाँति कुछ स्वच्छन्दता से अनुवादित हुआ होता।

[क्रमशः

बालकविनोद

वसन्त

१

नव वसन्त बहार भई जबै,
सब कली बन की विकसीं तबै ।
सुखद शीतल मन्द सुहावनी
विमल वायु बही मन भावनी ॥

२

रुचिर मौरन के रस तें पगी
पिक कुहू कुह बोलन है लगी ।
भँवर फूलन फूलन धावहीं ;
निज मनोहर शब्द सुनावहीं ॥

३

कमलिनी दिन माहिँ नई नई ,
कुमुदिनी निशि में, सब तें छई ।
जल सुगन्धित तालन को भयो,
रहि कहूं न मलीनपनो गयो ॥

४

जहँ लखौ तहँ पेड़न पैं चहूं
सुमन लाल कहूं, पियरे कहूं ।
खिलि रहे सुखमा सरसावहीं ;
महक मोहक मञ्जु उड़ावहीं ॥

५

अरुण रङ्ग मनोहर तें रँगे ,
कुसम लाल पलाशन में लगे ।
लखि जिन्हें मन में यह आवई ;
कह इन्हें बन-आगि जरावई ?

६

ऋतु वसन्तहि पात सड़े गले ,
जिन दए उन पेड़न पै, भले ।
नवल पल्लव सुन्दर सोहहीं ;
सब मनुष्यन के मन मोहहीं ॥

७

हम तुम्हें यह सत्य सुनावहीं ;
सुनहुं, बालक ! दान वृथा नहीं ।
जिन पुरातन दीन्ह तिन्हें नयो ,
लखहु, पेड़नहू मिलिही गयो ॥

———

चित्रगुप्त को रिपोर्ट



चिट्ठीरसां—आपके नाम एक वी० पी० भी है।

बाबू साहब—वी० पी० ! मेरे नाम !! नामुमकिन !!!

चि०—यह लीजिए।

बा०—(खूब देख भाल कर) यह मेरे लिये नहीं !

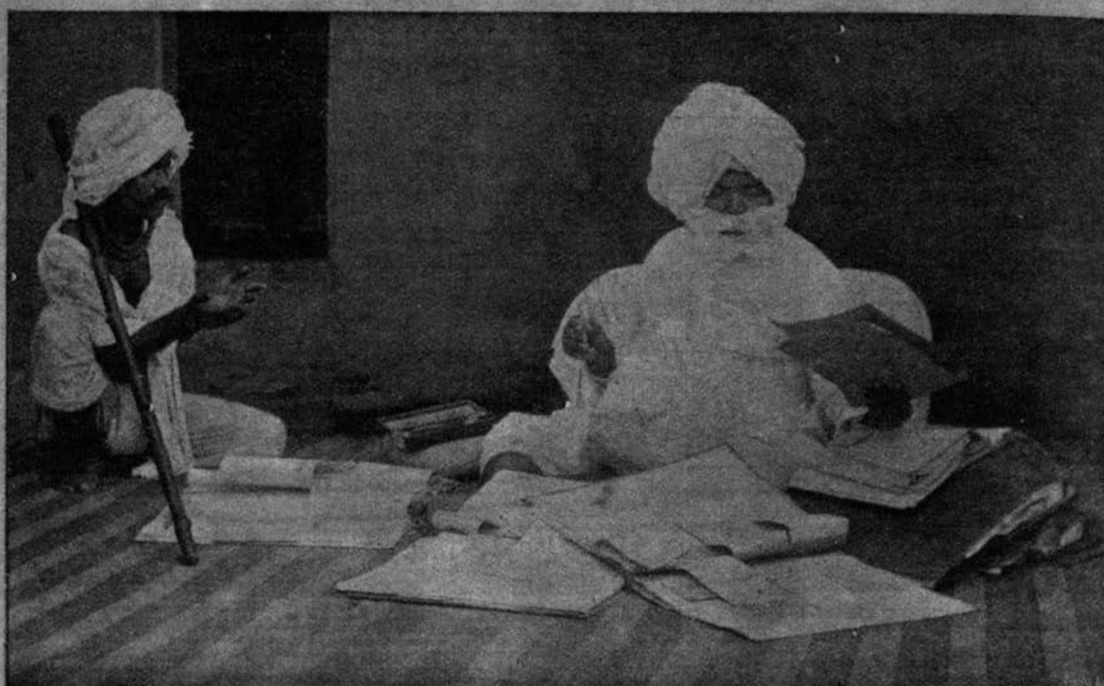
चि०—नाम ते इस पर आपही का है; हिन्दी में है; सो भी छपा हुआ है। (पढ़ता है)

बा०—नहीं, नहीं ! जहां से यह किताब आई है वहां यह नाम कोई नहीं जानता।

चि०—क्या आपके कई नाम हैं ?

बा०—बड़ा गुस्ताख़ है।

चि०—क़ुसूर माफ़ हो; इसी नाम पर आए हुए अख़बार वग़ैरह मैं रोज़ही आपको दे जाया करता हूं।



बा०—अरे मूर्ख! मेरे नाम के अगाड़ी और पिछाड़ी जो कुछ होना चाहिए वह इस पर नहीं है। मेरा नाम बाक़ायदे नहीं लिखा।

चि०—अच्छा आप इसपर लिख दीजिए कि अगाड़ी पिछाड़ी के न होने से आप लेने से इनकार करते हैं।

बा०—फिर गुस्ताख़ी! मैं तुम्हारी शिकायत करूँ-गा। (यह कह कर, खड़ेही खड़े, पॅंसिल से पैकेट पर 'इनकार किया' लिख कर बाबू साहब ने उसे चिट्ठीरसां को वापस दिया)

चि०—(चलता हुआ)

बा०—हँः वी० पी०! अभी दो वर्ष भी पूरे नहीं हुए!! मेरी प्रतिष्ठा में चोट लगने का भी ख़याल नहीं!!!

चित्रगुप्त (पार्षद की ओर देखकर)—अरुणक! यह सम्वाद जो मैंने अभी दर्ज रजिस्टर किया, उसकी यह नकल, तब तक, प्रयाग को 'सरस्वती' में छपने के लिये तुम फ़ौरन दे आओ।

अरुणक—जो आज्ञा, महाराज! (जाता है)



फ़तहपुर सीकरी का बाहरी दृश्य ।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] नवम्बर १९०१ ई० [संख्या ११

विविध वार्ता

हमारे पास एक प्रति लाहोर के दयानन्द एंग्लो-वैदिक कालिज की सन् १९००-१९०१ की वार्षिक रिपोर्ट ग्राई है जिसकी प्राप्ति हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। हमको स्वयं भी इस कालिज के देखने का सैाभाग्य प्राप्त हो चुका है। इस कालिज का प्रवन्ध एक कमेटी के ग्राधीन है जिसके सभासद इस रिपोर्ट के ग्रनुसार ५२ हैं। इस कमेटी के ग्राधीन ग्रैार सब-कमेटियां हैं जिनमें मुख्य कालिज ग्रैार मुख्य कमेटी हैं। इसके ९ सभासद हैं जिनमें ४ वकील, २ ग्रकैानटेण्ट, १ ट्रान्सलेटर, १ इञ्जीनियर ग्रैार १ प्रिन्सपल महाशय हैं। कालिज विभाग में इस वर्ष ३५५ लड़के ग्रैार स्कूल विभाग में ५८७ हैं। परीक्षा में यहां के लड़कों ने ग्रच्छा परिणाम दिखाया है ग्रैार इनमें से बहुतों को सर्कारी स्कालरशिप भी मिलते हैं। इस समय कमेटी के हाथ में चार लाख रुपए के लगभग है। हमें इस कालेज को देख कर विशेष सन्तोष प्राप्त होता है, विशेष कर इसलिये कि इससे पढ़ कर ऐसे लोग निकल रहे हैं जिनकी हमें ग्रावश्यकता है। हमारे पाठकों को विदित होगा कि गत ग्रकाल के समय इस कालेज के ग्रनेक लड़कों ने दूर दूर तक जाकर ग्रनाथ बालक बालिकाग्रों को रक्षा करके ग्रपने सच्चे देशहित का परिचय दिया था। यदि वास्तव में कालिज ऐसे लड़के तैय्यार करता है जो पढ़ कर देशाभिमानी होते हैं ग्रैार उसके उद्धार ग्रैार हित में ग्रपना समय ग्रैार धन लगा सकते हैं, तो हमारी सहानुभूति ऐसे विद्यालय से बढ़ कर ग्रैार कहीं के लिये नहीं हो सकती। इस कालिज ग्रैार स्कूल में हिन्दी सब बालकों को पढ़ाई जाती है, पर जहां तक हमें ज्ञात है, उपयुक्त पुस्तकों का प्रबन्ध यहां नहीं है ग्रैार यह बात कालिज के प्रबन्धकर्ताग्रों ग्रैार ग्राय्य समाज के लिये लज्जा की है। हमें विश्वास है कि कालिज के ग्रधिकारीगण इस ग्रोर ध्यान देंगे ग्रैार इस ग्रभाव की पूर्ति के लिये पूर्ण उद्योग करेंगे। इस समय कालिज को एक ग्रच्छे भवन की बड़ी ही ग्रावश्यकता है। इस के सफ-

लता पूर्वक कार्य को देख कर यह बात आश्चर्य सी जान पड़ती है कि अब तक यह काम क्यों न हो गया। कमेटी का अनुमान है कि इस काम में कम से कम ७१०००) लगेगा। ऐसे अच्छे काम के लिये यह कुछ अधिक नहीं है। इस विद्यालय से बहुत कुछ लाभ हुआ है और आशा है कि भविष्यत् में इससे और भी लाभ हो। ऐसी अवस्था में क्या यह हिन्दू मात्र और विशेष कर आर्यसमाजनुयायी लोगों का धर्म नहीं है कि इस कार्य को अपनी उदार सहायता से बनवा दें। जहां तक हमारा विश्वास है इस कालेज से केवल आर्यसमाजियों को ही लाभ नहीं है, वरन् पंजाब-निवासी हिन्दू मात्र के बालक इसमें शिक्षालाभ करते हैं। इस दशा में पक्षपात को छोड़ कर ऐसे विद्यालय की पूर्ण सहायता होनी चाहिए। प्यारे हिन्दुओ! व्यर्थ में तुम्हारा रुपया बहुत कुछ जाता है, अनेक सर्कारी चन्दों में तुम्हें ज़बरदस्ती रुपया देना पड़ता है, तो क्या तुम स्वतः कुछ देश-हितकर कार्य्यों में अपनी उदारता का परिचय नहीं दे सकते?

***

हमने सुना है कि श्रीनगर पूर्निया के उदार राजा कमलानन्दसिंह ने अयोध्यानिवासी लछिराम कवि को 'कमलानन्द कल्पतरु' नाम का अलंकार का ग्रन्थ बनाने के लिये २००) रु० पुरस्कार और ५००) रु० के कपड़े दिए हैं, तथा वह ग्रन्थ छपवा देने के लिये ले लिया है, जिसमें अनुमान से हजार बारह सौ रुपया लगेगा। सारांश यह कि राजा साहब ने एक अलंकार ग्रन्थ के लिये अढ़ाई तीन हज़ार रुपया खर्च डाला। हम राजा साहब की उदारता की निन्दा नहीं करते, परन्तु साथही हमको यह सुन कर कुछ विशेष सन्तोष भी प्राप्त नहीं हुआ। हमारे असन्तुष्ट होनेके कई कारण हैं। यदि शीत ऋतु हो और हम उसमें शीत के कारण अत्यन्त पीड़ित हों, तो हमारा काम केवल एक कम्बल ही से चल सकेगा; परन्तु उसकी अपेक्षा यदि हमें बढ़िया से बढ़िया गर्मी के कपड़े मिलें तो हम दाता के यद्यपि अनुगृहीत होंगे, पर अपने अभाव की पूर्ति न देख असन्तुष्ट बने रहेंगे। हमारे इस कथन का तात्पर्य यह है कि हमें अब अलंकार और साहित्य विषयक कविता के ग्रन्थों की आवश्यकता नहीं है। इनकी हमारे यहां भरमार है। कवियों से प्रार्थना है कि अब वे अधिक शृङ्गार रस में फंस कर साथही हमारे पूज्य देवी देवताओं को न खींचें। इस समय हमें आवश्यकता है ऐतिहासिक और वैज्ञानिक ग्रन्थों की। टाड का इतिहास अनुवादित पड़ा रहे। पृथ्वीराज रासौ के छपने के दिन न आवें; भारतवर्ष का अच्छा इतिहास लिखा जायही नहीं; पुराने अलभ्य ग्रन्थ अप्रकाशित पड़े रहें और राजा साहब अपनी उदारता अलंकार ग्रन्थों के प्रकाशित कराने में दिखावें—यह जानकर हमारे हृदय को व्यथा होती है। राजा साहब पढ़े लिखे और विज्ञ हैं, अतएव ही हमने इतना लिखने का साहस किया; नहीं तो हम मौनही साध चुपचाप बैठे रहते, चूं भी न करते। राजा साहब ने काशी नागरीप्रचारिणी सभा के स्थायीकोष में २०००) रु० देकर तथा अन्य कार्य करके सुकीर्ति प्राप्त की है। हमें आशा है कि भविष्यत् में हमें राजा साहब को उपालम्भ देने का अवसर न प्राप्त होगा।

***

गत संख्या में हम एज्यूकेशन कान्फरेंस के विषय में कुछ लिख चुके हैं, और हमारा विचार था कि उस संख्या में उसपर अपनी पूरी सम्मति दें। पर यह जान कर कि आगामी फ़र्वरी मास में एजूकेशन कमीशन बैठेगा, हम विस्तार पूर्वक कुछ न कहेंगे। केवल दो तीन विषयों पर अपनी सम्मति दे इस विषय को फ़र्वरी तक के लिये छोड़ देंगे। भारतवर्ष में इस समय पांच विश्वविद्यालय वर्तमान हैं; परन्तु विचित्रता यह है कि इन सभों में नियमादि और पठन पाठन की रीति एक दूसरे से नहीं मिलती। इससे यदि एक विद्यालय का बालक दूसरे विश्वविद्यालय में पढ़ना चाहे तो उसको विशेष कष्ट उठाना पड़ता है और यह समझ में

नहीं आता कि एकही देश के भिन्न भिन्न प्रान्तों में पठन पाठन की रीति भिन्न भिन्न क्यों की जाय। यदि एक प्रकार की पढ़ाई एक स्थान के लिये उपयोगी है तो वह दूसरे स्थान के लिये भी उतनीही आवश्यक होगी। अतएव सब विश्वविद्यालयों के एक से नियम होने चाहिएं। इन विश्वविद्यालयों के जो फ़ेलो नियत किए जाते हैं, उनके लिये विद्या प्राप्त करने की कोई अवधि नहीं है। चाहे वे निरक्षर भट्टाचार्य हों, परन्तु धनवान या गवर्नमेंट की दृष्टि में अच्छे ठहरें तो वे फ़ेलो नियत कर दिए जाते हैं। इसके साथही यह भी आवश्यक नहीं है कि फ़ेलो विश्वविद्यालय के अधिवेशनों में जाया करें। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में तो अनेक ऐसे फ़ेलो हैं जिन्हें अङ्गरेज़ी में हस्ताक्षर तक करने नहीं आता और न जिन्होंने कभी किसी अधिवेशन की शोभा अपनी उपस्थिति से बढ़ाई हो। ऐसे सभ्यों से क्या लाभ है यह समझ में नहीं आता। हमारी सम्मति में फ़ेलो पांच वर्ष के लिये नियत किए जांय और यदि विश्वविद्यालय के कार्य में वे उत्साह दिखावें तो वे पुनः नियत किए जावें, अन्यथा उनके स्थान पर दूसरे चुने जांय। दूसरा विषय जिसपर इस समय विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, वह यह है कि लड़के पढ़ लिख कर वास्तव में योग्यता प्राप्त करें और अपने सांसारिक कर्तव्यों का निर्वाह पूर्णतया कर सकें। जो पुस्तकें आज कल पढ़ाई जा रही हैं, वे ऐसी रद्दी हैं कि उनसे लाभ की कोई आशा ही कभी नहीं की जासकती। हमारी समझ में एन्ट्रेंस तक साहित्य संबन्धी पुस्तकें नियत ही न की जांय, वरन् यह स्थिर कर दिया जाय कि लड़के की ऐसी योग्यता होनी चाहिए। अनुवाद और लेख लिखने पर अधिक ध्यान दिया जाय और इतिहास आदि की पुस्तकें न नियत होकर विभाग नियत कर दिए जांय। इससे बड़ा भारी लाभ यह होगा कि लड़कों की रटने की बान छूट जायगी और अध्यापकों को भी कुछ पढ़ना होगा और अपने लेकचर पहिले से तैय्यार करने पड़ेंगे, और तब पठन पाठन का विशेष लाभ होगा। आज कल की अवस्था विचित्र है कि लड़के तो बी०ए०, एम०ए० पास कर लेते हैं, अङ्गरेज़ी में कहिए तो रो पीट कर कुछ लिख पढ़ या कह सुन भी लेंगे, परन्तु निज भाषा में एक पंक्ति भी लिखना उनके लिये दुस्साध्य कार्य है। इससे बड़ी भारी हानि यह है कि अन्य विदेशीय भाषा की कठिनता के आगे उन्हें नवीन नवीन विद्याओं की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं मिलता और इसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि वे अनुवाद करके या इधर उधर से चुराकर ग्रन्थकार बनने का साहस कर बैठते हैं। इसलिये हमारी सम्मति है कि देशभाषाओं की पढ़ाई बी०ए० तक हो। यह हमारी समझ में नहीं आता कि जब इङ्गलैण्ड में अंग्रेज़ लोग, जिनकी मातृभाषा अङ्गरेज़ी है, उसमें एम०ए० पास कर सकते हैं, तो भारतवासी अपनी भाषा में एम०ए० पास क्यों न करसकें। अभी इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने यह स्थिर किया है कि एन्ट्रेन्स में बालकों को देशभाषा अवश्य पढ़नी होगी। परन्तु मिडिल में इसपर ज़ोर नहीं दिया गया है। मिडिल में बालक देशभाषा पढ़ या न भी पढ़ सकता है, परन्तु एन्ट्रेन्स में उसे अवश्य पढ़नी होगी। इससे भाषाओं की पढ़ाई में हानि होगी। आशा है पश्चिमोत्तर प्रदेश का शिक्षाविभाग इस पर ध्यान देगा।

*
* *

हमारे पाठकों में से बहुतों को यह ज्ञात होगा कि १४ नवम्बर को सर ऐन्टनी म्याकडोनेल इस प्रदेश की लेफ़टनेन्ट गवर्नरी सर जे० डी० लैटूश को सौंप कर निज देश को पधारे और अब शासनकाल सर लैटूश का है। यों तो कई लेफ़टनेन्ट गवर्नर आए और चले गए, पर हमें विश्वास है कि सर ऐन्टनी का नाम इन सबसे अधिक काल तक स्मरणीय बना रहेगा। इनसा उदार और दृढ़ शासक अब तक कोई नहीं आया था। न्याय की ओर इतना अधिक इनका ध्यान था कि

विरोधी लोगों के सिर पटकने पर भी इन्होंने निज न्यायशील नीति का अवलम्बन किया। सर्कारी नैाकरों में से अनेक घूसखोरों के। निकाला, दीन प्रजा की पुकार पर ध्यान दिया, अकाल ग्रैार प्लेग के समय उपयुक्त प्रबन्ध किया ग्रैार सबसे बढ़कर यह काम किया कि नागरी अक्षरों का अदालतों में प्रचार किया। चाहे ग्रैार सब बातें लोग भूल जांय, पर केवल इसी आज्ञा के लिये इनका नाम इस प्रदेश ग्रैार हिन्दी के इतिहास में चिर-स्मरणीय बना रहेगा। यह बात दूसरी है कि दे। एक बातें में हमारी सम्मति सर ऐन्टनी से न मिलती हो, परन्तु इससे हमें उनके विरुद्ध न होना चाहिए। हमें उनके समस्त शासनकाल पर ध्यान करके ग्रैार उनके समस्त उपकारों ग्रैार कार्यों का स्मरण करके, तब उनके विषय में कुछ कहना चाहिए। हम ते। मुक्तकण्ठ से यह कहेंगे कि लाट म्याकडोनेल सा उदार, दृढ़, न्यायप्रिय ग्रैार उपकारी शासक अब तक हमको नहीं मिला था। यह जानकर हमें विशेष आनन्द प्राप्त हुआ कि अवध के ताल्लुकदारों ने इनकी एक प्रतिमूर्ति ग्रैार इन्हींके नाम से क़ैसरबाग लखनऊ में एक हाल बनाना स्थिर किया है। अब शासनकाल सर लैटूश का है। हमारे पाठकगण कदाचित इस बात के न जानते होंगे कि ये महाशय बहुत दिनों तक बनारस के कमिश्नर रह चुके हैं ग्रैार अब तक लोग उनकी दयालुता की प्रशंसा करते हैं। सर लैटूश हिन्दी भली भांति जानते हैं, ग्रैार ऐसा सुनने में आया है कि प्रयाग के भारतीभवन पुस्तकालय के बहुत दिनों तक सबस्क्राइबर रहे थे। हमें विश्वास है कि इनके शासनकाल में हिन्दी की विशेष उन्नति होगी ग्रैार ये चलते समय उससे अधिक यश ग्रैार वाहवाही ले जांयगे जितनी कि अभी सर ऐन्टनी ने ली है।

जीवनाग्नि

उस समय मैं सर्कारी कालेज में अध्यापक का कार्य करता था।

एक दिन धनपतिराय के वकील की चिट्ठी मिली। खोल कर पाठ करने से मालूम हुआ कि मेरे प्यारे मित्र का देहान्त हो गया है ग्रैार अपनी विल (वसीयतनामे) में वे अपने एकमात्र पुत्र रज्जन का तत्वावधान मेरे ऊपर छोड़ गए हैं। एक बक्स भी डाकवाला मेरे नाम दे गया। उस पर लिखा हुआ था कि रज्जन यदि बीस वर्ष की अवस्था तक जीवित रहे ते। उसे यह बक्स खोलने के। कहना, तब तक इसे अपने पास रख छोड़ना।

देखते देखते बीस वर्ष होगए। छोटा बालक रज्जन अब क्रमशः यैावन में पदार्पण कर रहा था। उसके समान रूपवान् पुरुष देश भर में दुसरा ग्रैार न था। मैंने बड़े यत्न से उसका पालन पोषण किया था ग्रैार उचित शिक्षा के लिये उसे अपने ही कालेज में भर्त्ती करा दिया था। इसी वर्ष, अर्थात् जब वह बीस वर्ष का हुआ, ते। वह बी०ए० की परीक्षा में पास हो गया। ऐसे शुभ अवसर पर मैंने उसके पिता के उस बक्स के। स्मरण कर आज उसे अपने सामने रज्जन से खुलवाया; परन्तु उसमें बड़े यत्न से रक्षित एक खण्ड काग़ज़ के। छोड़ ग्रैार कुछ नहीं मिला। कुछ संस्कृत, कुछ महाराष्ट्री ग्रैार कुछ पुराने पाली अक्षरों में उसपर लिखा हुआ था। बड़े परिश्रम से उसे पढ़ कर हम लोगों ने उससे नीचे लिखे हुए भावार्थ के। समझा, अर्थात्–भारतवर्षीय दक्षिण सागर में ... द्वीप के पश्चिम ग्रोर एक ग्रैार द्वीप है। उसका नाम काग़ज़ पर नहीं लिखा था, परन्तु किस मार्ग के अवलम्बन से वहां तुरन्त पहुंच सकते हैं ग्रैार पथ में कैान कैान से देश ग्रैार कैसी कैसी वस्तुएं मिलती हैं, यह सब उसमें निर्दिष्ट

था। फिर वह देश कैसा है, और वहां के दूसरे दूसरे समाचार, उसमें इस भांति से लिखे थे की कागज़ के ध्यान पूर्वक पाठ करने से वहां का पता ठीक ठीक लग सकता था।

फिर उसी कागज़ से ज्ञात हुआ कि वहां पर एक स्त्री है। यदि उस स्त्री तक कोई पहुंच सके तो जीवनाग्नि का गोला वह दिखा देगी। वह कहीं ऐसे स्थान में छिपी हुई है कि उस स्त्री को छोड़ दूसरा कोई उसका पता नहीं बता सकता। उस अग्नि का यह गुण है कि उसमें प्रवेश करने से मनुष्य यद्यपि अमर नहीं होता, तौभी सहस्रों वर्ष तक जीवित रह सकता है। धनपतिराय रञ्जन को उस अग्नि का पता लगाने के लिये बारम्बार आज्ञा दे गए हैं। इन सब अद्भुत व्यापारों को पाठ करके रञ्जन ने कहा "इसमें कोई सन्देह नहीं कि पिता बड़े चतुर थे"।

रञ्जन की बात सुन कर मुझे हँसी आगई, परन्तु बड़े कष्ट से हँसी रोक कर मैंने पूछा, "रञ्जन, ये सब देख सुन कर तुम्हें क्या ज्ञात होता है?" रञ्जन पहिले मुंह सिकोड़ कर सिर हिलाने लगा। फिर बोला कि "बुढ़ापे में पिता जी की बुद्धि सठिया गई थी"। मैंने पूछा "क्यों?"

रञ्जन—"क्यों कैसा? ऐसा पागल कौन है कि उन्नीसवीं शताब्दी के शेष भाग में ऐसी कथा पर विश्वास कर सके?"

मैंने कहा "ठीक कहते हो"।

इसके पीछे फिर दो महीने बीत गए। परन्तु सच पूछिए तो मेरा हृदय कौतुहल से पूर्ण हो रहा था, और उस देश में जाकर वह कथा यथार्थ है वा नहीं, यह देखने की मुझे बहुत उत्कण्ठा हो रही थी। परन्तु कोई मुझे बावला न समझे, इसी-से मैं अपने मन की बात मनही में गुप्त रखता।

मेरे ही हृदय में यह कौतुहल उद्दीपित नहीं हुआ था। रञ्जन पहिले पहिल कागज़ की बात पर हंसता था, परन्तु वास्तव में उसके भी मन में बड़ा हलचल होने लगा। वह भी लज्जा के मारे मुझसे इस विषय में कुछ नहीं कहता था। निदान एक दिन वह बोला कि इस समय तो हमलोगों के पास कोई काम नहीं है, एक बार देशाटन कर आवें तो कैसा हो? मैंने पूछा "कहां जाओगे?" रञ्जन कुछ बेर तक सोचने लगा, फिर बोला "दक्षिण सागर की ओर जाने से कुछ हानि है?"

मैं और हंसी नहीं रोक सका, जोर से हंसने लगा। मेरे हंसने से रञ्जन कुछ लज्जित होकर बोला 'मैं उस द्वीप में जाने के लिये घबरा रहा हूं यह न सोचिए, दक्षिण सागर में सुना है कि मोतियों का व्यापार अच्छा होता है, उसके विषय में कुछ जानकारी हो जाय तो अच्छा हो"।

मैंने कहा "कुछ हानि नहीं है। एक पन्थ दो काज हो जायंगे। परन्तु इस बात को किसीसे प्रकाशित न करना, लोग सुनकर हमलोगों को पागल समझेंगे। फिर हम उनके सामने अपना मुख नहीं दिखा सकेंगे।

रमुआ नाम का एक नौकर हमारे पास बहुत दिनों से था। मैंने उससे पूछा तू भी साथ चलेगा? रञ्जन ने कहा "रमुआ, तुझे काला पानी देखने की इच्छा नहीं होती?" रमुआ ने दो तीन बार सिर खुजा कर कहा "अच्छा मुझे कोई उजर नहीं है"।

सब बात पक्की हो गई। थोड़े ही दिनों में मन्द्रास होते हुए हमलोग सेतुबन्ध रामेश्वर पहुंचे। फिर वहां से सिलोन गए; और गाली बन्दर से एक छोटा सा जहाज दक्षिण जा रहा था, एक दिन हम लोग भी उसके यात्री हो गए।

द्वीपपुञ्जों के समीप पहुंचते पहुंचते हमलोगों के दुःख का आरम्भ हुआ। अबतक हमलोग बेखटके यात्रा कर रहे थे, परन्तु अकस्मात् हमारी सुख शान्ति सब नष्ट होने लगी। एक दिन आंधी चली, जहाज़ डूबने लगा। द्वीपों के छोटे छोटे से नालों में घूमना पड़ेगा, इस लिये हमलोगों ने एक छोटी सी नौका सिलोन में मोल ले ली थी। जब

देखा कि जहाज़ के बचने की कोई सम्भावना नहीं है, तब हमलोग तीनों मनुष्य अपनी उस छोटी सी नाव को समुद्र में डाल कर उस पर कूद पड़े। हमलोग आधो मील भी न गए होंगे कि जहाज़ जल में मग्न हो गया। उसी समय हमारी छोटी सी नाव भी डूबने ही पर थी परन्तु भारी भारी तरंगों से पूर्ण समुद्र के ऊपर हमलोग तिनके के समान बह चले। नाव कभी लहरों के भीतर लुप्त हो जाती और कभी वायुवेग से बिजली के समान दौड़ने लगती। चारों ओर घना अन्धकार छा रहा था, सारा आकाश बादलों से ढका हुआ था, और ठहर ठहर कर बिजली पल भर के लिये जलमय जगत को आलोकित कर देती थी। साथही साथ बज्रविनाद से सारी पृथिवी कांप उठती थी। हमलोग तीनों मनुष्य नौका के पेटी में तख़्तों को ज़ोर से पकड़ कर बैठे थे। इतना ज्ञान हमलोगों को था कि यदि नौका पर हमलोग बैठे रह जांय तो मृत्यु का भय नहीं है, क्योंकि नौका एयर-टाइट (वायुपूर्ण) थी, किसी प्रकार से डूब नहीं सकती थी। यह हम ठीक नहीं कह सकते कि कब तक उन पर्वताकार तरंगमालाओं ने हमारी नाव को गेंद बना कर एक ओर से दूसरी ओर दूर दूर तक फेंका था, परन्तु कुछ काल पीछे सौभाग्यवश बादल फट गए और चारो ओर फिर स्वच्छ हो गया। देखते देखते फिर नीले रङ्ग के आकाश को हंसाता हुआ चन्द्रमा खिल उठा। उसी चांदने में जान पड़ा कि हमारी नाव एक छोटी सी नदी के भीतर प्रवेश कर रही है। चारो ओर निरीक्षण किया, परन्तु समुद्र का वहां पर पता न लगा। वायु के झोके से हम लोग समुद्र से बहुत दूर आ पड़े थे। अस्तु, हमारे प्राण बचा लेने के लिये जगत्पिता परमेश्वर को हमलोग धन्यवाद देने लगे।

चारो ओर घना जङ्गल, जहां तक दृष्टि जाती थी केवल जङ्गल ही जङ्गल देख पड़ते थे। ये निश्चय ही हिंसक बनैले जन्तुओं से पूर्ण थे, निश्चय इनमें असंख्य सिंह विचरते होंगे। हमलोगों ने डर के मारे नदी के बीचो बीच लङ्गर डाल दिया और तनिक देर निद्रा की चेष्टा करने लगे, परन्तु मच्छड़ों के उपद्रव से नींद असम्भव हो गई। पैर से सिर तक चादर लपेट कर हमलोग पड़ रहे, परन्तु वहां पर ऐसी अवस्था में निद्रादेवी का अनुग्रह लाभ करना सम्भव नहीं था। इस समय रमुआ चिल्ला उठा। उसे देखने को ज्योंही हमलोगों ने मुह खोला, एक मच्छड़ ने रञ्जन को नाक पर ऐसा काट लिया कि उसने तुरन्त अपना मुख छिपा लिया। परन्तु मैंने मच्छड़ों की दंशनयन्त्रणा को न मान सिर उठा कर देखा। जो कुछ देखा उससे मेरा सारा शरीर कांपने लगा। एक बड़ा भारी सिंह तैर कर हमलोगों की ओर आ रहा था, उसके दोनों नेत्र उज्वल नक्षत्रों की नांई चमक रहे थे, उसके केशर खड़े थे, और केशरों में होकर कल कल शब्द करता हुआ जल प्रवाहित हो रहा था।

मेरा कण्ठ सूख गया, और मैं भैाचक्का सा हो गया। धीरे धीरे बोला "रञ्जन उठो, भयानक विपत्ति आ पहुंची है"। रञ्जन उछल पड़ा और सामने सिंह को देखकर पिस्तौल उठाकर बोला "कैपिटल शिकार मिल गया। बहुत अच्छा पट्ठे, तनिक और सामने आ जा"। रञ्जन का साहस देख मेरे भी हृदय में साहस आया, और मैं भी पिस्तैाल लेकर उठ बैठा।

हमलोगों को उठते देख शेर तिल भर भी भयभीत न हुआ, बरु पहिले से अधिक शीघ्रतर नौका की ओर आने लगा। मैंने लक्ष्य कर फ़ायर कर दिया, परन्तु उसी क्षण एक विकट चिल्लाहट से चारों ओर गूंजने लगा, अकस्मात् बड़े वेग से नदी का जल आलोड़ित होने लगा। हमलोग नाव पर से जल में गिरने लगे, परन्तु उसकी पेटी में बैठे थे इससे बच गए। फिर एक पल भर पीछे देखा कि सिंह जल के भीतर से नाव के पास ही अपना सिर निकाल रहा है और गर्जता हुआ

सामने वाले दोनों पैरों से नाव को पकड़ रहा है। हम दोनों ने तुरन्त उसके सिर में गोली मारी। नाव फिर, समुद्र में आंधी के समय जिस भांति नाच रही थी उसी भांति, उछलने लगी। परन्तु सिंह दृष्टि से अगोचर हो गया।

उस रात्रि को नींद और नहीं आई। दूसरे दिन बड़े तड़के हमलोगों ने नाव खोल दी। समुद्र की ओर जाने से कोई लाभ नहीं था। जहां पर जहाज़ डूब गया था, वहां छोटी छोटी इतनी पहाड़ियां थीं कि उस ठौर पर कभी किसी जहाज़ के आने की सम्भावना नहीं थी; समुद्र की ओर जाना और मृत्यु को बुला लेना दोनों बराबर था। दूसरे पक्ष में नदी की राह लेने से किसी लोकालय में पहुंच जांयगे वा नहीं यह भी कौन कह सकता था—परन्तु उसी ओर जाए बिना दूसरा उपाय और नहीं था, इस कारण हमलोग घने जङ्गल ही में नाव चलाने लगे।

हमारी नौका दिनभर चलती रही। दोनों ओर जङ्गलही जङ्गल दीखता था, मनुष्यों की बस्ती का चिन्हमात्र नहीं मिलता था। धीरे धीरे सन्ध्या हो आई। तब भयानक जीवों से परिपूर्ण इस देश में और आगे बढ़ना अनुचित जान हमलोगों ने बीचो बीच ही नाव लंगर के सहारे ठहराई, और कुछ खा पी कर सो रहे।

एक बड़ा हुल्लड़ सुनकर सब की नींद टूट गई। हमलोग चौंक कर उठ बैठे, देखा कि तीर पर असंख्य मनुष्य हाथों में बर्छे लेले कर हमारी ओर लक्ष्य कर रहे हैं और एक अद्भुत भाषा में हुल्लड़ मचा रहे हैं। उनमें से कोई कोई जङ्गल से लकड़ी काट कर बेड़ा बना उस पर बैठ हमारे पास आने का उपक्रम कर रहे थे। यह सब देख कर उनके आने के पहिले ही हम लोगों ने नाव खोलदी और उनके पास जा पहुंचे। उनमें से कोई कोई हम पर आक्रमण करने की चेष्टा कर रहे थे, परन्तु पीछे से किसीने पुकार कर कहा देखो तो इनका रङ्ग गोरा है कि काला? सामनेवाले एक असभ्य ने कहा इनमें से दो गोरे हैं और एक सांवला है। पीछे से उत्तर मिला, सब लोग हट जाओ। रानी की आज्ञा है कि इनको देखते ही मेरे पास ले आना। इनपर अस्त्र प्रयोग न करना। इस आज्ञा को सुनते ही सम्मुखवर्त्ती असभ्य लोगों का दल हट गया। उनमें से एक वृद्ध ने आकर हमसे पूछा "तुम लोग कौन हो, कहां से आए हो?" मैं उनकी भाषा कुछ कुछ समझता था। वह सिलोन और मद्रास वासियों की भाषा से कुछ कुछ मिलती जुलती थी। उसी भाषा में मुझसे जहां तक बन पड़ा मैंने उत्तर दिया "हम लोग विदेशी हैं। जहाज़ डूब जाने पर यहां आ पहुंचे हैं"।

बूढ़े ने कहा "तुम्हारे यहां आने का समाचार रानी जी ने पहिले ही से कह दिया था। अब हम आपको राजधानी में ले चलेंगे।

हमलोगों को बड़ा अचम्भा हुआ और मैं रञ्जन की ओर निहारने लगा। देखा कि वह भी मेरी ओर निहार रहा है। तो क्या धनपतिराय जी का लेख सत्य है? उन्होंने जीवनाग्नि के देश में जाने के लिये जो पथ बताया था और पथ में जो जो वस्तुएं दृष्टिगोचर होंगी यह सब जो लिखा था, सो सब हमको देख पड़ा। उन्हें देखकर हमें कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ था, परन्तु वृद्ध के वाक्यों को सुन कर हमारा कौतुहल उद्दीपित हो आया और हमलोग सोचने लगे कि क्या धनपति राय जो कुछ लिख गए हैं सब सत्य है?

मैंने पूछा तुम्हारी रानी यहां से कितनी दूर रहती हैं? वृद्ध ने उत्तर दिया कि राजधानी यहां से तीन दिन की राह है।

इसके उपरान्त वृद्ध के आज्ञानुसार सब लोग नाव में से सब वस्तु किनारे पर लाने लगे। उन्हें रोकना हमने वृथा समझा, क्योंकि क्रुद्ध होने पर वे हमें तुरन्त मार सकते थे। हमलोग चुपचाप खड़े खड़े उनका कार्य देखने लगे। तब वृद्धने कहा "अब चलिए, हमलोग अपने गन्तव्य पथ पर चलें। कल एक गांव में हमलोग पहुंचेंगे। वहां से रानी

के पास समाचार भेजा जायगा, और ३ दिन में उत्तर आजायगा। मैंने पूछा तुम्हारी इस राजधानी का क्या नाम है। उसने उत्तर दिया "कर कर का गिरिकन्दर"।

हमलोग सब चलने लगे। जङ्गल के बीच में होकर सकरी छोटी पगडण्डी पर हमलोग दिन भर चले, हमारे साथी–न मालूम वे हमारे रक्षक थे कि भक्षक–बड़ा कोलाहल मचाते हुए चले। उनके भयङ्कर शब्द से दूर दिगन्त तक जङ्गल गूंजने लगा। हिंसक जन्तु सब उसे सुन कर दूर भाग गए।

रात्रि के एक स्थान पर हमलोग ठहर गए। असभ्य लोग जङ्गल ही में रहते हैं। वहां पर उन्हें कुछ भी भय नहीं लगता था। वे दे। हरिण और बहुत से पक्षी मार लाए और उन्हें अग्नि में भूंज कर खाने लगे। पास ही कई केले और दूसरे फलों के वृक्ष थे, हमने उन्हींसे अपनी क्षुधा की शान्ति की। हमलोग बहुत थक गए थे, इसलिये ईश्वर के हाथ आत्मसमर्पण कर हरी हरी दूब पर लेट गए। कुछ देर में वह वृद्ध दलपति हमारे पास आया और हमारे देश की बहुत सी बातें पूछने लगा, तथा हमने भी उसके मुख से वहां की बहुत सी कथाएं सुनीं। जान पड़ा कि यहां के निवासी संख्या में बहुत कम हैं, और जङ्गल के बीच में दूर दूर पर उनकी छोटी छोटी बस्तियां हैं। प्रत्येक बस्ती पर एक एक दलपति नियत है, और ये सब गांव, सारा देश, जङ्गल पहाड़, सब उसी एकमात्र रानी के अधीन है। प्रजालोग दैववश ही कभी उन्हें देखपाते हैं। नहीं ते। वह अपना गृह त्याग कर वर्ष में कदाचित एकही आध दिन बाहर निकलती हैं। उनके नैाकर चाकर सब गूंगे हैं, इससे रानी किस भांति से अपना समय काटती हैं किसीको नहीं ज्ञात है। यहां के दुर्दान्त वनवासी एक मात्र रानी ही का भय मानते हैं और कदापि उनकी आज्ञा के विपरीत काम करने का साहस नहीं करते। कारण यह है कि उनमें कई एक अलौकिक शक्तियां हैं। साधारण मनुष्य में उन शक्तियों का रहना असम्भव जान पड़ता है। इसलिये रानी के लोग देवता (टू टू पड़ाऊ) का अवतार जानते हैं। रानी का वयस अनिश्चित है। वृद्ध के बाप दादा के समय में भी वही रानी राज्य करती थीं और अब तक वह नवयैावनसम्पन्ना है।

दूसरे दिन हमलोग एक छोटी सी बस्ती में जा पहुंचे। गांव भर के बालक युवा जरठ नर नारी सब हमलोगों के। देखने आए और बड़े आश्चर्य से आंखें फाड़ फाड़ अपना आश्चर्य जताने लगे। पहिले उन्होंने हमलोगों के समान मनुष्य नहीं देखा था। उन लोगों में और सब स्त्रियों से सुन्दरी एक युवती थी; वह मुख से एक शब्द भी नहीं बोली, परन्तु धीरे धीरे रञ्जन के पास चली आई और दोनों हाथों के। उसके गले में डाल कर उसकी देह से चिपट गई और बार बार उसका मुख चूमने लगी। मैं ते। यह देख कर स्तम्भित हो गया, मेरा हृदय धड़ धड़ धड़कने लगा और मैंने सोचा कि ये राक्षस अब थोड़ी देर में हमलोगों के। बलिदान देंगे। रञ्जन भी उस छोकरी की करतूत से विस्मित हो गया और व्याकुल होकर चारों ओर स्त्री पुरुषों के। देख देख घबराने लगा। परन्तु वास्तविक घटना हमलोगों के समझ में न आई। आश्चर्य की बात है कि जङ्गली लोग इससे कुछ नहीं हुए, और बूढ़ा दलपति एक ओर खड़ा होकर मुसकराता रहा।

उससे पूछने पर जान पड़ा कि कन्या का नाम नीरा है और इस देश की विवाहपद्धति ऐसीही होती है। वर कन्या के इच्छानुसार विवाह बन्धन जितने दिन तक वे चाहें रह सकता है। आज राजनाथ राय, बी. ए., का विवाह इसी भांति हो गया और जब उसने अपनी अवस्था में इस परिवर्त्तन का अनुभव किया ते। वह कुछ दुखी नहीं जान पड़ा। मैंने इससे जितनी लज्जा अनुभव की, उसे उसकी एक अंश भी न हुई; हां, रमुआ मारे लाज के अधमरा हो गया। परन्तु थोड़ी देर में

रञ्जन नीरा का हाथ पकड़ कर गांव की परिक्रमा करने चला गया, और हम दोनों चुपचाप वहीं बैठे रहे।

दूसरे दिन सुना कि दलपति राजधानी चला गया है। इससे हमने समझ लिया कि उसके लौटने तक हमें इन असभ्यों ही के बीच रहना पड़ेगा। अस्तु, इससे हमें कुछ विशेष क्लेश नहीं हुआ और वे लोग भरसक हमारी सेवा करने लगे। दो दिन ऐसे ही बीत गए। तीसरे दिन रमुआ के साथ एक मनुष्य से तकरार हो गया। उस दिन हमलोगों ने देखा कि वे लोग गुट्ट बांध कर धीरे धीरे कुछ कह सुन रहे हैं। हमने समझ लिया कि अब हमारे सर्वनाश का प्रबन्ध हो रहा है। बूढ़ा दलपति भी उपस्थित नहीं था, यदि वह रहता तो इन बनैलों को अपने शासन में ले आता। नीरा ने रञ्जन से कहा कि ये लोग रमुआ को मार डालेंगे! इसे सुनकर हमलोग पहिले ही से सावधान हो गए, और अपने जेब के पिस्तौलों को तैयार कर लिया।

सन्ध्या होते होते हमलोगों ने देखा कि वे अस्त्र शस्त्र ले ले कर हमारी ओर आ पहुंचे! उनमें एक मनुष्य एक लम्बी छुरी निकाल कर रमुआ के गले पर फेरने आया। मेरा हृदय डर के मारे कांपने लगा, परन्तु रञ्जन ने झट जेब से पिस्तौल निकाल कर उस मनुष्य पर चला दी। सारा जङ्गल उसके शब्द से हिल उठा और वह मनुष्य भूमि पर गिर पड़ा। असभ्यों ने कभी बन्दूक का शब्द नहीं सुना था और उसके गुण से भी वे परिचित न थे। इस अपूर्व घटना को देखकर वे भय से स्तम्भित हो गए। थोड़ी देर तक किसीकी बुद्धि ठिकाने न रही। उन्हींमें का एक मनुष्य सामने पड़ा लोहू लोहान हो रहा था, इसे देख कर पत्थर भी पिघल जाता, वे मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गए। अकस्मात् सब लोग एक स्वर से एक विकट शब्द करते हुए बर्छे ले ले कर हम लोगों पर टूट पड़े।

हमलोग केवल तीन मनुष्य और वे सैकड़ों थे। पिस्तौल हमारे अभी खाली हो जायंगे और तब वे राक्षस हमें मार डालेंगे, यह सोच कर मैं बहुत घबराया; परन्तु रञ्जन पास की एक पहाडी की ओर लपका और हमसे भी अपने साथ जाने को उसने कहा। हमलोग पल भर के भीतर दौड़ कर पहाड़ी की ओर अपनी पीठ कर के खड़े हो गए, इससे कोई पीछे से हमारे ऊपर आक्रमण न कर सका।

इधर वे लोग हमारी ओर आने लगे। उनसे बोलने की चेष्टा वृथा थी, क्योंकि कोई किसीकी भाषा ठीक ठीक नहीं समझता था। तौभी हम लोग चुप चाप खड़े रहे; पहिले किसीको हम मारना नहीं चाहते थे। वे हमारे और भी निकट आए और क्रोध से गर्जने लगे। रञ्जन चिल्ला कर बोला "यही समय है, फ़ायर"—और तीन पिस्तौलों से बड़े जोर से दूसरे शब्दों को दबाते हुए शब्द हुआ, सबके सामने धुंआ भर गया, और तीन मनुष्य फिर गिरे। जंगली लोग तितर बितर हो कर पीछे हट गए।

कोई पांच मिनट काल फिर बीत गया, तब विकट गर्ज्जन करते हुए वे हम पर फिर धावित हुए, उनमें से तीन मनुष्य फिर मारे गए।

आत्मीय, स्वजन, भाई, पुत्र, पिता, इत्यादि को आंखों के सामने मरते देख वे धीरे धीरे उन्मत्त हो गए, अब उन्हें मृत्यु से कुछ डर न रह गया। हम भी पिस्तौल दागने लगे, वे भी मरने लगे। धीरे धीरे हमारी गोलियां सब शेष हो गईं। तब मृत्यु निश्चित जान, दूसरा कोई उपाय न देख, हमलोग तीनों मनुष्य उन लोगों में घुस पड़े। पहिले वे कुछ भय खा कर हट गए, परन्तु दूसरी ही क्षण में उन्होंने हमें फिर घेर लिया।

मैंने देखा कि रञ्जन गिर पड़ा और एक मनुष्य उसकी हत्या के लिये उसपर लपका; फिर देखा एक लड़की ने आकर रञ्जन को बचा लिया; जो उसे मारने आता था, वह उसीके सामने अपनी

देह रख देती थी; मैंने उसे पहिचान लिया, वह नीरा थी।

उसी क्षण ऐसा जान पड़ा कि बूढ़ा दलपति चिल्ला रहा है, किन्तु इसके पीछे किसके भाग्य में क्या हुआ मैंने कुछ नहीं जाना। मेरा सिर चक्कर खाने लगा, अंग अंग शिथिल हो गए, नेत्रों से अग्निशिखा निकलने लगी, मैं चारो ओर उज्वल ज्योति देखने लगा, वह ज्योति धीरे धीरे अन्धेरे में मिल गई, फिर मेरी दशा क्या हुई मैंने कुछ नहीं जाना।

जब मुझे ज्ञान हुआ, तो नेत्र खोल कर मैंने देखा कि एक कोठरी में लेटा हुआ हूं, सारे अङ्ग में बड़ा दर्द हो रहा है और बल मुझमें राई भर नहीं बचा है। धीरे धीरे पिछली रात्रि की सब कथा स्मरण हो आई। अपनी सारी देह को देखा, परन्तु कहीं बहुत चोट नहीं लगी थी। मैं उठ बैठा, और देखा कि जिस कोठरी में हमलोग पहिले टिके थे, यह वही कोठरी है।

रमुआ मेरे पास ही पड़ा था। उसे मैंने जगाया। राक्षसों ने उसे जीता छोड़ दिया है यह देख कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ; परन्तु रञ्जन को न देख कर हृदय व्याकुल होने लगा। हम दोनो ढाढ़स बांधकर कोठरी से बाहर आए। वहां बूढ़ा दलपति बैठा था, उसने हमसे क्षमा मांगी और कहा, मेरे यहां पर न रहने के कारण यह सब गड़बड़ हो गया है; ये लोग सब पशुओं के समान हैं, क्रोध होने से इन्हें ज्ञान नहीं रहता। आपसे जिन्होंने अपराध किया है, रानी निश्चय उनको प्राणदण्ड देगी। मैंने पूछा "रानी ने हमलोगों के विषय में क्या आज्ञा दी है?"

बूढ़ा—आप सबको राजधानी में बुलाया है, कल ही वहां को यात्रा करेंगे।

मैं—रञ्जन कहां है, उसपर तो कोई आपत्ति नहीं आई?

बूढ़ा—नहीं! वह अच्छी तरह हैं। जिस समय ये लोग आप लोगों को मार रहे थे, ठीक उसी समय मैंने आकर सबको रोक दिया था। तनिक भी और देर हो जा जाती तो आप लोगों को न बचा सकता। तब तो बड़ा अनर्थ हो जाता।

मैं—क्यों?

बूढ़ा—तब रानी जी निश्चय हम सबका जड़ मूल से नाश कर डालतीं।

मैं रञ्जन के लिये घबराने लगा। रानी के विषय में यद्यपि बहुत कुछ पूछने को मुझे था, तौभी मैंने उसे कहा मुझे रञ्जन के पास ले चलो।

देखा कि रञ्जन सो रहा है और उसके सिर के पास बैठी नीरा उसकी सेवा करी है। मैंने उसे पुकारा, परन्तु वह न बोला। देह पर हाथ रक्खा तो देखा कि उसे प्रबल ज्वर चढ़ रहा है। मैंने बूढ़े से कहा "इसकी इस दशा में हमलोग कैसे राजधानी जा सकते हैं?"

बूढ़े ने कहा "जाना ही होगा। चाहे जैसे हो। रानी की आज्ञा टल नहीं सकती। इन्हें ले जाने का प्रबन्ध मैं करूंगा"।

वैसा ही हुआ। दूसरे ही दिन हमलोग करकर की ओर चलने लगे। दलपति ने हरी हरी पत्तियों से एक डोली बना कर उसमें रञ्जन को सुला दिया, चार राक्षस उसे उठा कर ले चले।

दूसरे दिन सन्ध्या के पहिले ही हमलोग एक बड़े पर्वत के सम्मुख पहुंचे। पर्वत को काट कर एक मार्ग बना था, और उसके दोनो ओर असंख्य छोटे छोटे से दीपक जल रहे थे। द्वार पर बहुत सी सेना खड़ी थी, सेनापति ने दलपति से सब कथा सुन कर द्वार छोड़ दिया। हमलोग कन्दर के भीतर घुसे।

थोड़ी दूर आगे बढ़ कर हमने देखा कि एक ठौर पर दो द्वाररक्षक खड़े हैं। उन लोगों ने हमें देख कर भूमि तक सिर झुका कर अभिवादन किया, पर कुछ कहा नहीं; रानी के सब सेवक गूंगे थे।

थोड़ी दूर और आगे एक मनुष्य हमारे सम्मुख आया और हमलोगों को अपने साथ लिवा ले चला। एक कोठरी में हमलोग गए और वहां

रञ्जन को लेटा दिया। नीरा साथ ही साथ आई थी, वह उसीके पास बैठी रही। हमलोग दूसरी कोठरी में ठहरे। भोजन बहुत उत्तम मिला। फिर मैं सो गया। [शेष आगे]

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

उन्नीसवीं शताब्दी का इतिहास यदि विचारपूर्वक अवलोकन किया जाय, तो उसमें यह विलक्षणता मिलेगी कि संसार की प्रत्येक जाति, चाहे वह उन्नति की दैाड़ में पीछे ही क्यों न हो, वर्तमान प्रचलित कई प्रथाओं से असन्तोष प्रगट करती है। यह भाव किसी विषय विशेष में ही प्रगट नहीं होता, वरञ्च धर्म, साहित्य, सामाजिक नियम तथा राजनैतिक प्रणाली, सब इस शत्ताब्दी में युक्ति की कठोर विवेचना से हिल गए हैं। योरप की वर्तमान जातियों में रूस के लोग प्रायः अर्द्ध सभ्य कहते हैं, परन्तु उसमें भी आज कैान्ट टोल्सटाय (Count Tolstoy) ने जो आन्दोलन मचा रक्खा है, और जिसके कारण रुस की सरकार ने उन्हें अपने राज्य से निकाले जाने की आज्ञा भी दी है, विज्ञ पठितसमाज से गुप्त नहीं है। एक ओर तो वह दल है जो कैान्ट को अधर्मी राजद्रोही कह कर ठट्ठे मारता है, और एक ओर रुस और संसार मात्र का सभ्य समाज है जो इनको देश हितैषिता का अवतार और सत्य सिद्धान्तों का वक्ता कहता है। यह तो योरप की एक जाति की बात हुई। अमेरिका के आदि निवासी रेड इन्डियन (Red-Indians) भी परिवर्तन की उमंग में शिक्षा लाभ और उच्चपद प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। अफ़्रिका में मिश्री लोग स्त्रियों को स्वतन्त्र करने के हेतु आन्दोलन कर रहे हैं, और आश्चर्य की बात यह है कि बड़े बड़े मुफ्ती और मुल्ला आज इस मत से सहानुभूति प्रगट करते हैं। एशिया एक विशाल महाद्वीप है, इसमें अनेकानेक जातियां वास करती हैं, पर इसमें भी आज कोई ऐसी जाति नहीं हैं जो उन्नति करने का उद्योग न करती हो। जिस जाति ने समयानुकूल सामयिक त्रुटियों के दूर करने में शीघ्रता की, वह शीघ्र उन्नति के शिखर पर चढ़ गई। गत शताब्दी के प्रारम्भ में जापान का नाम केवल व्यापारियों और यात्रियों को ही मालूम था; आज जापान का सामना करने से रूस भी भयभीत होता है और संसार की सब जातियां उसको उन्नति का आदर्श मानती हैं। जिसने इस १९वीं शताब्दी के विचार-प्रवाह के विरुद्ध चलने का प्रयत्न किया, उसको क्षति होने में अधिक विलम्ब नहीं हुआ। चीन का प्राचीन बल और सैाभाग्य उसे चाहे कुछ काल लैां और स्वतन्त्र रखे, पर यदि वह जापान का अनुकरण करने पर सनद्ध न होगा तो उसके दिन भी गिने हुए हैं।

भारतवर्ष में उन्नति की चेष्टा का अभाव कभी नहीं रहा। जब जब भारतवासियों को शान्ति और सुख प्राप्त हुआ, इन्होंने उन्नति के चिन्ह प्रगट किए। मुसलमानों के राज्य में अकबर का समय मरुस्थल में वाटिका के समान था, और इसीलिये उस समय बीरबल, टोडरमल ऐसे राजनीतिज्ञ तथा तुलसीदास जी ऐसे कवि उत्पन्न हुए। पर आज कल हमें सम्पूर्ण रूप से शान्ति प्राप्त है, सद्विचारों के प्रचार करने में पूरी सुगमता है; पेशावर से मन्द्राज जाना ऐसा है जैसा अगले समयों में दिल्ली से आगरे जाना था। इस समय में यदि हममें महानुभाव उत्पन्न न हों तो हमारी जाति के स्वत्व में शंका करनी अनुचित न होगी। परन्तु हममें इस समय कई एक ऐसे महात्मा हुए हैं जिन्होंने हमें जीवित रक्खा है। अंग्रेज़ी शिक्षा के आरम्भ ही से हमारी कई एक प्रथाओं की नीती-शून्यता और हमारे विश्वासों की निर्बलता हममें इनकी ओर ऐसी घृणा उत्पन्न करा रही थी कि यदि ये स्वतन्त्रता के आचार्य न जन्म लेते तो हिन्दू जाति का नाम संसार में जीवित न रहता और हमारे शास्त्रों का वैसा ही शुष्क मान्य रहता जैसा आज लैटिन,

ग्रीक का हो रहा है। उन्हीं महापुरुषों में से एक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती थे।

संक्षिप्त जीवनी

स्वामी जी का जन्म सन् १८२४ ई० में गुजरात देश के मोरवी नगर में हुआ था। ये अवदीच्य ब्राह्मण थे। इनका असल नाम मूलशंकर था। इनके पिता अम्बाशंकर एक प्रतिष्ठित जिमीदार थे। इनको बाल्यावस्था ही में रुद्री और शुक्ल यजुर्वेद आरम्भ करा दिया गया था। इनके पिता शैव थे, इस कारण पुत्र से नित्यप्रति पार्थिव पूजन कराया करते थे। जब इनकी अवस्था दस वर्ष की हुई, तो एक दिन शिवरात्रि का व्रत करने को इनसे कहा गया, परन्तु इनकी माता जी ने ऐसा न करने दिया। जब यह चौदह वर्ष के हुए तो इनके पिता ने इनको व्रत रखने पर बाध्य किया और इन्हें शिवरात्रि की कथा सुनवाई जो इनको बहुत प्रिय लगी। हिन्दूमात्र शिवरात्रि को जागना धर्म्म समझते हैं। इनके पिता इन्हें लेकर नगर के बाहर एक शिवालय में गए। वहां और बहुत से लोग थे। बारह बजे तक तो लोग पूजा करते रहे और फिर नींद के झोके आने लगे और वहां ही सब लोग सो गए। बालक मूलशंकर इस भय से न सोया कि कहीं उसके व्रत का फल नष्ट न हो जाय। जब बिलकुल सन्नाटा हो गया तो एक बिल से चूहा निकला और महादेव के लिङ्ग के उपर चढ़ कर भक्षतादि खाने लगा। यह देखकर चंचल बालक के हृदय में विचारों की तरङ्गें उठने लगीं। वह सोचने लगा कि महादेव जी तो त्रिशूलधारी हैं, बड़े बड़े दैत्यों का संहार करते हैं, पर इस समय इस छोटे से चूहे को भी अपने ऊपर से हटाने की सामर्थ्य नहीं रखते। यह शंका यहां लो बढ़ी कि उसने तुरन्त अपने पिता को जगा कर उनसे यही प्रश्न पूछा। पिता जो बड़े क्रोधित हुए और कहने लगे कि यह तो केवल महादेव की मूर्ति है। जब बालक की शंका समाधान नहीं हुई, तो वह यह कहकर वहां से उठ खड़ा हुआ कि जबलों मैं महादेव जी का प्रत्यक्ष दर्शन न करलूंगा, व्रत इत्यादि भी कभी नहीं करूंगा। घर जाकर उसने माता से भोजन मांग अपनी भूख मिटाई। स्वामी जी के चचा इनसे बड़ा स्नेह रखते थे। स्वामी जी की अवस्था जब बीस वर्ष की हुई, तब इनके चचा की मृत्यु हो गई। यह दुःख इनके लिये असह्य सा था। इनके चित्त में मनुष्यसम्बन्धी कतिपय प्रश्न उत्पन्न होने लगे। अपने मित्र तथा विज्ञ पण्डितों से इन्होंने यह पूछा कि मनुष्य अमर किस प्रकार से हो सकता है। सबने एकही उत्तर दिया कि "योगाभ्यास से"। तब इनके मन में यह समाई कि किसी प्रकार घर छोड़ दें। माता पिता से यह प्रार्थना की कि मुझे विद्याध्ययन के हेतु काशीजी जाने दीजिए। उन्होंने यह बात स्वीकार न की वरन् वे उनके विवाह की बात चीत करने लगे। यह देख कर स्वामी जी ने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मैं कदापि बिवाह न करूंगा। परन्तु विवाह की सब तैय्यारियां हो गईं। जब एक महीना रह गया तब स्वामी जी बहाना कर घर से निकल पड़े। इधर उधर भ्रमण करते हुए इन्हें कई एक साधू मिले। इनमें से एक ने इनकी अंगूठियां ठगलीं और दूसरे ने, जो एक रानी को अपने फन्दे में फंसा लाया था, इनसे हंसी ठट्ठा करना आरम्भ किया। इसलिये यह कहीं न ठहरे, और यह सुनकर कि सिद्धपुर में एक बड़ा मेला होता है, उसी ओर चल पड़े। किसीने इनके पिता से यह समाचार कह दिया। पिता चार सिपाही साथ ले वहां पहुंचे और उन्होंने इन्हें एक मन्दिर में आ पकड़ा। पिता के देखते ही वह उनके पैरों पर गिर पड़े। पिता ने क्रोध में आकर इनका तूंबा तोड़ डाला, कोपिन फाड़ डाली, और इनको उन चार सिपाहियों के पहरे में छोड़ दिया। चौथे दिन यह रात्रि के समय सिपाहियों को सोता छोड़ भाग निकले और गांव के बाहर एक वाटिका में एक पेड़ पर चढ़ बैठे और दिन भर भूखे प्यासे वहीं

रहे। वहां से चल कर कई स्थानों पर कितने ही साधुओं से मिले और योगाभ्यास भी किया। घूमते घामते अलकनन्दा नदी के उद्गम तक पहुंचे। वहां बड़ी बर्फ़ थी, मन में आया कि हिमालय पर गलकर जीवन दें; पर फिर सोचा कि बिना ज्ञान प्राप्त किए मरना पाप है, इसलिये विद्या प्राप्त करनी चाहिए। यह निश्चय कर वह मथुराजी पहुंचे। उस समय वहां एक विलक्षण विद्वान रहते थे। ये दोनों आंखों से अन्धे थे और उनकी अवस्था उस समय ८१ वर्ष की थी। इनका नाम स्वामी विरजानन्द था। इन्हें प्राचीन आर्य ग्रन्थों के अतिरिक्त नवीन ग्रन्थों पर रुचि न थी। स्वामीजी ने इनसे ही विद्याभ्यास आरम्भ किया और इनके नित्यप्रति भोजनादि का प्रबन्ध एक धर्मात्मा गृहस्थी अमर लाल जी ने कर दिया था, जो इनसे बड़ा स्नेह रखते थे। स्वामी दयानन्द दत्तचित्त हो श्री स्वामी विरजानन्द जी से पढ़ते और उनकी आदर पूर्वक बड़ी सेवा भी करते रहे। नित्य ही उनके लिये यमुना जी से जल लाया करते। वे अढ़ाई वर्ष लों मथुरा में रहे और अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्त सूत्र इत्यादि ग्रन्थ समाप्त किए। विद्यार्थियों का यह एक नियम है कि जब उनकी शिक्षा समाप्त हो जाती है तो अपनी कृतज्ञता का परिचय देने के हेतु वे गुरु जी के सम्मुख कुछ भेंट लेजाते हैं। स्वामी दयानन्द के पास कुछ धन तो था ही नहीं, बिचारे कुछ लैांग के दाने लेजा कर गुरु जी से आज्ञा मांगने गए। गुरु जी ने कहा "क्या मैं तुमसे ऐसा पदार्थ मांगूंगा जो तुम्हारे पास न हो"। इस के उत्तर में स्वामी जी ने सविनय निवेदन किया कि जो कुछ मेरी सामर्थ्य में है मैं भेट करने के उद्यत हूं। गुरु जी ने कहा "जा, वेदविद्या संसार से उठ गई है, उसका प्रचार कर, मत मतान्तरों को दूर कर, देश का सुधार कर, मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषियों की निन्दा भरी है, ऋषिकृत ग्रन्थ इससे रहित हैं, इसे स्मरण रख; यही ऋषिकृत और मनुष्यकृत ग्रन्थों की पहचान है"। स्वामी दयानन्द ने गुरु की आज्ञा पालन करने की प्रतिज्ञा की और गुरु का आशीर्वाद ले वे वहां से विदा हुए और उसी दिन से इनके परोपकारी जीवन का आरम्भ समझना चाहिए।

स्वामीजी की शिक्षा और उनके सिद्धान्त।

हम प्रथम ही कह चुके हैं कि देशहित का अंकुर उसी दिन जमता है कि जब मनुष्य प्रचलित प्रथाओं से असन्तोष प्रगट करता है। इस प्रकार का असन्तोष स्वामी दयानन्द को बाल्यावस्था ही से उत्पन्न होने लगा। मूर्त्ति पर से चूहे का अक्षत लेना, पिता का विद्याध्ययन की अपेक्षा बालक के विवाह की अधिक चिन्ता करना, घर छोड़ने पर ठग साधुओं का मिलना, इन सबने उनके चित्त में प्रबल असन्तोष का प्रादुर्भाव करा दिया था। पर यदि यह असन्तोष असन्तोष ही बना रहता तो स्वामी दयानन्द एक कट्टर नास्तिक होते। पर ईश्वर ने इनको सन्तोष की भी सामग्री प्रदान की और आबू पर्वत पर अच्छे अच्छे योगियों के दर्शन भी करा दिए, जिनसे इन्होंने योगाभ्यास के गुप्त तत्वों को सीखा। स्वामी विरजानन्द जी से मिलकर इनको वेदों, उपनिषदों और अन्यान्य ग्रन्थों पर श्रद्धा हुई और इन ग्रन्थों को पढ़कर उन्होंने उनमें भारत के सुधार की कुञ्जी पाई। स्वामीजी का सिद्धान्त था कि प्रथम शिक्षाप्रणाली का सुधार होना अत्यन्तावश्यक है। सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास के आरंम्भ में उन्होंने लिखा है— "विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और लड़के और लड़कियों की पाठशाला एक दूसरे से दो कोस की दूरी पर होनी चाहिए" और "पाठशाला से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम वा नगर रहे और सबको तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन, दिए जांय; चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हों, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए। उनके माता पिता अपने सन्तान से वा सन्तान अपने माता पिता

से न मिल सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रखें। जब भ्रमण करने के जावें, तब उनके साथ अध्यापक रहें, जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें, श्रौर न श्रालस्य प्रमाद कर सकें"। आगे चलकर उसी समुल्लास में मनु जी के "कन्यायां सम्प्रदानं च कुमाराणाम् च रक्षणम्" का अभिप्राय यों लिखते हैं कि यह "राजनियम श्रौर जातिनियम होना चाहिए कि लड़के श्रौर लड़कियों को पांचवें या आठवें वर्ष से आगे कोई अपने घर न रख सके, पाठशाला में अवश्य भेज देवें, नहीं तो दण्डनीय होवेंगे"। अपने समस्त ग्रन्थों में विद्यार्थियों के हेतु ब्रह्मचर्य्य की अतीव आवश्यकता पर स्वामी जी के समान किसी सुधारक ने ऐसा ज़ोर नहीं दिया है। "चैाबीस वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रह कर वेदविद्या श्रौर सुशिक्षा का ग्रहण करे"। फिर पृष्ठ ४६ में लिखा है–"जो २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य्य रहे तो स्त्री १७ वर्ष; जो पुरुष ३६ वर्ष तक रहे तो स्त्री १८ वर्ष। इसी प्रकार ४८ वर्ष से आगे पुरुष श्रौर २४वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य्य न रखना चाहिए"। स्वामी जी की सम्मति थी कि विद्या का अधिकार सब वर्णों को है। पृष्ठ ५४ में इसका कारण यह लिखा है कि "आचार्य राजा इतर क्षत्री वैश्य श्रौर उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावे क्योंकि वे जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें श्रौर क्षत्री आदि न करें, तो विद्या, धर्म्म, राज्य, श्रौर धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती; क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने से क्षत्री आदि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं, जीविका के आधीन श्रौर क्षत्री आदि के आज्ञा दाता श्रौर यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्डादि में फँस जाते हैं। श्रौर जब क्षत्री आदि विद्वान होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास श्रौर धर्म्मपथ में चलते हैं श्रौर उन क्षत्री आदि विद्वानों के आगे पाखण्ड, झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते। श्रौर जब क्षत्री आदि अविद्वान होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्री आदि को वेदादि सत्य शास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें; क्योंकि शास्त्रादि ही विद्या धर्म, राज्य श्रौर लक्ष्मी की वृद्धि करनेहारे हैं, वे कभी भिक्षावत् नहीं करते, इसलिये वे विद्याव्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते, श्रौर जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्ड रूप अधर्म-युक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्री आदि को नियम में चलानेवाले ब्राह्मण श्रौर सन्यासी तथा ब्राह्मण श्रौर सन्यासी को सुनियम में चलानेवाले क्षत्री आदि होते हैं। इसलिये सब वर्णों के स्त्री पुरुष में विद्या श्रौर धर्म्म का प्रचार अवश्य होना चाहिए"। स्वामी जी की इस शिक्षाप्रणाली का सार वही है जो आज कल योरप में वर्ता जाता है। Compulsory Education अर्थात् प्रत्येक बालक का पाठशाला में विद्या पढ़ने के लिये वाध्य किया जाना, Boarding schools अर्थात् छात्रशालाओं का पाठशाला के साथ साथ रहना श्रौर Levelling tendency अर्थात् सब जाति का शिक्षा पाना है। परन्तु स्वामी जी की बतलाई प्रणाली कुछ कठोर है, क्योंकि बालकों को माता पिता से पत्र व्यवहार तक करने की मनाही की गई है। स्वामी जी की सम्मति थी कि इन पाठशालाओं में वेद श्रौर शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान करा दिया जाय श्रौर प्रत्येक बालक को सर्व शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए। पर कतिपय ग्रन्थों का निषेध करते हुए स्वामी जी लिखते हैं कि रघुवंश, तुलसीकृत रामायण श्रौर "सर्व भाषा ग्रन्थ" कपोलकल्पित हैं। हमारी समझ में यह स्वामी जी की भूल है। नाटकादि का पढ़ना पढ़ाना ऐसा बुरा नहीं है जैसा वे समझते थे। नाटक मनुष्यजीवन के कर्तव्यों को चित्राङ्कित श्रौर सजीव कर देते हैं। शेक्सपीअर श्रौर कालिदास के

नाटकों को पढ़ते हुए हममें अपने जीवन की भिन्नता और गम्भीरता के सम्बन्ध में उच्चभाव उत्पन्न होते हैं। तुलसीदास की रामायण में श्री रामचन्द्र जी को ईश्वर का अवतार माना है और रामायण में बहुत सी असम्भव बातों का वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसीसे स्वामी जी ने इसको पढ़ने का निषेध किया है। प्रथम तो स्वामी जी ने तुलसीदास जी की भक्ति और अद्भुत कवित्वशक्ति को पूर्णरूप से नहीं पहचाना, और फिर यदि मान भी लिया जाय कि उसमें उनके मतविरुद्ध बातें हैं, तौभी उसका निषेध कर आप "न गच्छेत जैन मन्दिरम् न पठेत यावनी भाषाम्" इत्यादि वाक्यों का अनुमोदन कर संकीर्णहृदयता का प्रचार किया है। हमें खेद के साथ आश्चर्य होता है कि स्वामी जी ने "सब भाषा ग्रन्थों" को "कपोल कल्पित मिथ्या ग्रन्थ" कैसे कह दिया जब कि वे स्वयं अपने ग्रन्थों को भाषा ही में लिखते थे। स्वामी जी के अन्यान्य सिद्धान्त आज कल सर्व-साधारण पर विदित हैं। स्वामी जी ने ईश्वर को निराकार मानकर मूर्तिपूजा का निषेध किया है, श्राद्धों को व्यर्थ माना है, विधवा विवाह को अनुपयोगी समझ "नियोग" अर्थात् विधवा स्त्री को सन्तान उत्पन्न कराने के लिये अपने पति के भाई से समागम करने की आज्ञा दी है। ईश्वर, जीव, प्रकृति को अनादि और नित्य माना है, हिन्दूमात्र को एक दूसरे के साथ खाने की आज्ञा दी है; परन्तु इसके ही साथ यह भी लिखा है कि केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकती; जब तक आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विद्या और वेदविद्या का प्रचार, मिथ्या भाषणादि कुलक्षण दूर न होंगे, सच्चा सुधार स्वप्नमात्र है।

द्वीप द्वीपान्तर में जाने की आज्ञा स्पष्टरूप से दी है। सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास, २६४ पृष्ठ में लिखा है—"जब महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था, उस में सब भूगोल के राजाओं को बुलाने का निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन नकुल, सहदेव, चारों भाई चारों दिशा में गए थे; जो दोष इसमें मानते तो कभी भी न जाते। सो प्रथम आर्यावर्तदेशीय लोग व्यापार, राजकार्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल में घूमते थे, और जो आज कल छूत छात और धर्म्म नष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य देश देशान्तर, द्वीप द्वीपान्तर में जाने आने में शंका नहीं करते, वे देश देशान्तर के अनेकविध मनुष्यों के समागम, रीति भांति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूर वीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला, महाभ्रष्ट म्लेच्छ कुलोत्पन्न, वेश्यादि के समागम से आचारभ्रष्ट धर्महीन नहीं होते, किन्तु देश देशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम से छूत और दोष मानते हैं!!! आगे चल कर लिखते हैं कि हमें देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं है, दोष तो पाप के काम करने में लगता है"। फिर आगे "इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते लगाते विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा दिया। हाथ पर हाथ धरे घर बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पका कर खावें, परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्यावर्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है।

पञ्जाब में आज कल एक शुद्धी सभा स्थापित है। इसके चलानेवाले सिक्ख लोग हैं। इसका उद्देश्य यह है कि यदि कोई हिन्दू मुसलमान वा इसाई होकर पुनः हिन्दू धर्म्म स्वीकार करे तो वह उचित संस्कार के पश्चात् हिन्दू करलिया जावे। स्वामी दयानन्द इससे परम सहानुभूति रखते थे। कई एक समय बहुधा अन्य धर्मावलम्बियों के पुनः संस्कार के समय उपस्थित भी थे। यदि विचार कर देखा जाय तो Conversion अर्थात् पुनः

संस्कार की प्रथा हिन्दूओं में न होने से हिन्दू-धर्म्म के। बहुत हानि हुई। जब शंकर बौद्धों के। हिन्दू कर सके, ते। यदि गुरु नानक के अनुयायी स्वामी दयानन्द ने मुसलमानों और ईसाईयों के। हिन्दू कर-लिया ते। क्या पाप किया। यदि यह कहा जाय कि मुसलमान और ईसाई मांस भक्षण से कुत्सित हो जाते हैं ते। हम यह कहते हैं कि जिला प्रताप गढ़, सुलतानपुर, और बिहार की ओर एक बृहत संख्या मुसलमानों की है कि जो नाममात्र के ते। मुसलमान हैं, परन्तु उनकी रीति चाल सब हिन्दुओं की है। वे "खांजादे" कहलाते हैं। इनमें बहुधा बूढ़े लोग अबतक शिखा रखते हैं। जो कायस्थों से मुसलमान हुए हैं "लाल" कहलाते हैं और अपने नाम के साथ "लाल" शब्द का प्रयोग करते हैं—जैसे "हसन अली लाल"। चैाका देकर रोटी करते और खाते हैं, हिन्दुओं से प्रीति रखते हैं। क्षत्री मुसलमान क्षत्री मुसलमान ही से विवाह करते हैं, जैसे मन्द्राज के तरफ़ ब्राह्मण ईसाई ब्राह्मण ईसाई से। दक्षिण के ओर मैमू मुसलमान हिन्दु धर्म्म शास्त्र के अनुसार चलते हैं और अदालत में उनके मुकद्दमें भी मनु इत्यादि धर्म्म शास्त्रों के अनुसार होते हैं। निदान इस भारतवर्ष में असंख्य ऐसे लोग पड़े हैं कि जो जनसंख्या में ते। मुसलमान और ईसाई लिखे गए हैं, पर वास्तव में आचार विचार में वैसेही कट्टर हिन्दू हैं कि जैसे हिन्दुनाम-धारी। यही मुसलमान जब कुछ वर्षों के अनन्तर शहर के मुसलमानों से विवाहादि करने लगेंगे ते। इनमें भी गोमांस भक्षण इत्यादि आचारभ्रष्टता आजायगी। इसलिये इन दिहाती मुसलमानों के। हिन्दू करना गोरक्षा का भी एक सहज उपाय है। इसके अतिरिक्त पुनःसंस्कार की प्रथा न होने से कितने ही बालक जो धोखे अथवा भूल से ईसाई हो गए थे, ईसाईही बने रहे, यद्यपि वे स्वयं या उनके माता पिता हृदय से चाहते थे कि वे हिन्दू बना लिए जांय। पश्चात्ताप से पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है। पर हमारा वर्तमान हिन्दूसमाज इस सिद्धान्त पर नहीं चलता। हमने जानकर "वर्त्तमान" शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि महाराष्ट्र इतिहासवेत्ताओं ने लिखा है कि पेशवा लोग बहुधा उन हिन्दू बालकों के।, जो मुसलमान हो जाते थे, फिर हिन्दू बना लेते थे।

स्वामी जी की शिक्षा का प्रभाव

जबसे स्वामी जी ने देशोपकार करने की प्रतिज्ञा की, वे नगर नगर भ्रमण करते रहे और जहां जाते वहां व्याख्यान देते या शास्त्रार्थ करते थे। भारतवर्ष में जितने धर्म्म आज लों प्रचलित हैं, सबके प्रतिनिधि उनसे विवाद करने जाते। उस समय लोगों के। आश्चर्य होता था कि एक सन्यासी सुधार की वही बातें कहता है कि जो अबलों वे हिन्दू धर्म्म के विरोधियों से सुना करते थे। पण्डितसमाज इस बात पर चकित होता कि वह अपने कथन का प्रमाण वेदों और उपनिषदों से देते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वामी जी के व्याख्यान सुनने के। शहर का शहर उमड़ पड़ता और उनके शास्त्रार्थ की चर्चा घर घर होने लगती। जो स्वामी जी से सहमत नहीं होते, उन्हें धर्म्म-सभा के स्थापित करने की सूझी और जो स्वामी जी के अनुयायी थे, उन्होने "आर्य्य समाज" स्थापित किया। पहिले पहल यह समाज बम्बई में खुला। पर आर्य्य समाज का जितना प्रबल दल आज कल पञ्जाब में है, उतना और कहीं नहीं। इसका कारण चाहे जो कुछ हो, पर गुरु नानक की शिक्षा से छूत छात का आडम्बर कम होने से माने। पञ्जाब एक दयानन्द और उसकी शिक्षा के। स्वागत करने के हेतु प्रस्तुत था। यह स्वामी जी ही की शिक्षा का प्रभाव है कि जिस देश में संस्कृत का पढ़ना पढ़ाना थोड़े से ब्राह्मणों में केवल विवाहादि कराने के हेतु नाम मात्र के। रह गया था, वहां आज क्वेटा में भी जो बिलोचिस्तान में हैं, संस्कृत की एक पाठशाला स्थापित हो। इस समय भारतवर्ष में जातीय गैारव और देशहित की शिक्षा यदि किसी

स्कूल में मिलती है तो वह "दयानन्दएंग्लो-वैदिककालिज लाहौर" है। यहां के प्रिन्सिपल लाला हंसराज जी अवनैतिक अध्यापक हैं, जिनके चरित्र का अपने छात्रों पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। बालिकाओं के शिक्षार्थ सबसे उत्तम पाठशाला "जालन्धर कन्या महाविद्यालय" है। स्वामी जी ने मरने से पूर्व जो वसीयत (स्वीकार पत्र) लिखी थी, उसमें उन्होंने अपने सर्वस्व को अन्यान्य देशोपकारी कार्य्यों के अतिरिक्त "आर्यावर्त के दीनों और अनाथों की सहायता और उनकी विद्या शिक्षा में ख़र्च करने" की आज्ञा भी दी थी और इस कार्य को आर्यसमाज ने ऐसे उत्साह और सुप्रबन्ध से चलाया है, कि हम सनातन धर्म्मावलम्बियों को लज्जा आनी चाहिए। मध्यप्रदेश में अकाल के पड़ने पर माता अपने बच्चों को बेचती थीं और ईसाई पादड़ी उन्हें दयाकर अपने अनाथालयों में रख पालन करते थे। हममें बहुत से लोग ईसाईयों को गाली देकर यह कहते हैं कि वे धोखे से ईसाई कर लेते हैं। पर ऐसा कहना अपने आलस्य और देशहितैषिता के अभाव का परिचय देना है। पञ्जाब आर्यसमाज की ओर से कितने ही सुशिक्षित एम.ए., बी.ए., अकाल पीड़ित देशों में जा छोटे छोटे अनाथ-निराश्रय बच्चों को लाए और उनके पालन पोषण और शिक्षा के प्रबन्ध के निमित्त उन्होंने फ़िरोज़पुर इत्यादि नगरों में अनाथालय स्थापित किए। ये सब बालक, जो आज इन आश्रमों में पाले जाते हैं, या तो काल के कवर होते, अथवा मिस्टर स्मिथ या सैय्यद अली कहलाते।

स्वामी जी की शिक्षा का बड़ा भारी प्रभाव यह हुआ कि आज कल के हिन्दू यह समझने तो लगे कि सुधार करने के हेतु हमें विदेशीय आचार्यों से शिक्षा ग्रहण करने और विदेशीय जातियों का अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं है। आज कल की दूषणीय प्रथाएं प्राचीन आर्यों से प्रचलित नहीं हैं। बालविवाह, "नौ कनौजिया दस चूल्हा," विदेश जाने का निषेध, स्त्रियों को मूर्ख रखना, इत्यादि आधुनिक प्रथाएं हैं जो बौद्धों और मुसलमानों के समय से जड़ पकड़ गई हैं।

वेदों की सच्ची प्रतिष्ठा जितनी स्वामी जी के समय में हुई है, उतनी शायद जैमिनी जी के समय में हुई होगी। चारों वेद इस समय ५, में मिलते हैं। सन् १८६२ की बात है कि वल्लभकुल सम्प्रदाय के आचार्य से बम्बई हाईकोर्ट में पूछा गया कि हिन्दुओं की प्राचीन पुस्तकें कौन कौन सी हैं। उन्होंने कहा कि पहली पुराण, दूसरी वेद, तीसरी शास्त्र है। इसी प्रकार जब ईसाई पादड़ी वेदों का अनुसन्धान करने लगे तो उन्हें कपोलकल्पित कई एक ग्रन्थ मिले, परन्तु सच्चे वेदों का कहीं पता भी न था। मृत जर्मन पण्डित मेक्समूलर ने पहिले पहिल ऋग्वेदसंहिता को प्रकाशित कराया। परन्तु पहिले पहिल उसका हिन्दी अनुवाद करने का गौरव स्वामी दयानन्द सरस्वती ही को प्राप्त है। वेदों के कई अनुवाद सायनाचार्य जी, महीधर जी, रमेशचन्द्र दत्त इत्यादि के मिलते हैं। महीधर जी वेद को वाममार्ग की तरफ खींचते हैं, रमेशचन्द्र दत्त युरोपीय पुरातत्वज्ञों की नाईं वेदों में सभ्यता की क्रमिक उन्नति ढूंढ़ते हैं और आर्यों को वैदिक समय में गोमांसभक्षक बताते हैं। स्वामी दयानन्द ने वेदों को ईश्वरकृत मान कर उनको मनुष्यजीवन सम्बन्धी अकाट्य सिधान्तों का भण्डार दिखलाने का प्रयत्न किया है। अंग्रेज़ लोग सायनाचार्य्य के अनुवाद पर अधिक श्रद्धा रखते हैं। स्वामी जी ने लिखा है कि वेदों का अनुवाद करने के हेतु आधुनिक कोश, व्याकरण से सहायता नहीं मिलती, वरञ्च निघंटू और अष्टाध्यायी, जिनका पढ़ना पढ़ाना आजकल बन्द है, परमोपयोगी हैं। तात्पर्य यह कि सब योरोपीयन तथा हिन्दू पुरातत्वज्ञ और स्वामी जी इस बात पर सहमत हैं कि वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। परन्तु पूर्वकथित लोग वेद को केवल ऐतिहासिक दृष्टि से देखते हैं, और उसमें मानुषी

रीति नीति की उतरोत्तर वृद्धि का मर्म पाने का प्रयत्न करते हैं। उनकी समझ में वेदों के पीछे के ग्रन्थ बढ़ी हुई सभ्यता का परिचय देते हैं, परन्तु स्वामी जी का मत था कि वेदों में आदर्श रीति नीति का वर्णन है और पीछे के सब ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक आदरणीय हैं। हम इस लेख में इस का निर्णय नहीं किया चाहते कि इसमें कौन सा मत सत्य है, क्योंकि इसका विचार इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर है कि "ईश्वरकृत ग्रन्थ की आवश्यकता है या नहीं?" जिसपर हम इस पत्रिका में विचार नहीं किया चाहते।

चरित्र और स्वभाव

आज कल के सन्यासियों में स्वामी दयानन्द जी सा देशहितैषी मिलना बहुत कठिन है। स्वामी जी के विरोधी भी कहते हैं कि वह बालजितेन्द्रिय थे। उनके चरित्र में कोई धब्बा नहीं था। वह जहां जाते पाठशालाएं स्थापित करते और लोगों को सुमार्ग की ओर ले चलते। महाराना चित्तौड़ से मिलकर उन्होंने उनको परस्त्रीगमन निषेध का उपदेश दिया। जोधपुर के महाराज की शोचनीय दशा देख कहने लगे कि आप मुझसे अपनी दिनचर्य्या सुनाकर अपनी दशा सुधार लें। एक बेर की बात है कि नन्ही जान, जो महाराज जसवन्त सिंह जी की एक वाराङ्गना थी, उनके पास बैठी थी, की इतने में महाराज को स्वामी जी के आने का समाचार मिला। महाराज ने नन्हीजान को चले जाने का सङ्केत किया। जब उसको चौपान में बैठा कर उठाने लगे तो एक ओर चौपान झुक गया। महाराज ने आप अपने एक हाथ का सहारा दिया। इतने में स्वामी जी जा पहुंचे और महाराज साहेब की यह करतूत देख दुःख से पीड़ित हो बोले "हा खेद! सिंह की ध्वजा पर कुतिया का इतना जोर! ऐसे समागम से यदि कुत्ते न उत्पन्न हों तो और क्या हो!!" स्वामी जी के चरित्र की ऐसी ऐसी घटनाएं स्पष्टरूप से सिद्ध कर देती हैं कि उन्हें देशहितैषिता का एक स्वाभाविक नशा था जो सत्य कहने में उन्हें निर्द्वन्द बना देता था।

चन्दापुर के एक रईस ने उत्सव कराना चाहा। आपने सम्मति दी कि प्रत्येक धर्म्मप्रतिनिधि को बुलवा कर उनसे अपने अपने धर्म पर व्याख्यान करा दो, सत्य का निर्णय भी हो जावेगा और उत्सव का उत्सव। उन्होंने साहेब कलक्टर से ऐसा होने के लिये आज्ञा भी ले ली और ईसाई पादड़ी तथा मुसलमानों से स्वामी जी से विवाद भी हुआ।

महाराना चितौड़ से कह कर उन्होंने राज-कचहरियों में नागरी करा दी। सन् १८८२ ई० में जब शिक्षा-कमीशन बैठा था तो उन्होंने पश्चिमोत्तर-प्रदेश-निवासियों से मेमोरियल (प्रार्थना पत्र) भेजने का अनुरोध किया था और लिखा था—"ऐसा ज्ञात हुआ है और गत दिवस नैनीताल की सभा की ओर से एक इसी विषय में पत्र भी आया था, उसके अवलोकन से निश्चय हुआ कि पश्चिमोत्तर देश से मेमोरियल नहीं गया। इसलिये आप को अति उचित है कि मध्यप्रदेश में सर्वत्र पत्र भेजकर बनारस आदि स्थानों से, और जहां जहां से परिचय हो, सब नगर व गांवों से मेमोरियल भेजवाइए। यह काम एक के करने का नहीं है और अवसर चूके यह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हो गया तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नीव पड़ जावेगी"। अन्तिम वाक्य नागरी प्रेमियों को कण्ठस्थ करने योग्य हैं। उन्हीं के लिखने पर फरुखाबाद आर्यसमाज की ओर से सहस्रों हस्ताक्षर कराए गए और मेमोरियल भेजा गया।

स्वामी जी के मत प्रचार करने के ढङ्ग में हमें एक बड़ा दूषण दीखता है। यद्यपि हम इस बात को मानते हैं कि स्वामी जी का प्रबल हौसिला यह था कि भारतवर्ष में एक धर्म्म हो जावे, इसलिये वे सब धर्म्मवालों से विवाद करते थे। सत्यार्थ-

प्रकाश इत्यादि ग्रन्थों में बार बार यह कहा है कि "मेरा तात्पर्य किसी की हानि या विरोध करने का नहीं है, किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है;" "सर्वशक्तिमान परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों की आत्माओं में प्रकाशित करें"। पर इसके साथ ही हमें यह कहने में भी कोई संकोच नहीं कि वे विरोधियों को ऐसे कटु और कभी कभी असभ्य वाक्य कह जाते थे कि जो एक महान् सुधारक को उचित नहीं थे, और उन्होंके सिद्धान्तों के प्रचार में विलम्ब डालते थे। बहुत से लोग यह कहेंगे कि स्वामी जी सुधार के विचार ऐसे मूर्खान्ध दल पर फैलाते थे कि बिना कटुवाक्य कहे वे सफलीभूत न होते। हम केवल इसके उत्तर में यही कहना चाहते हैं कि यदि स्वामी जी चाहते तो ऐसे शब्दों का प्रयोग न करते। संसार में सुकरात(Socratese) ऐसे कई एक बड़े बड़े सुधारक हुए, जिन्होंने प्रिय मधुर शब्दों को कदापि नहीं छोड़ा और साथ ही वे अपने उद्देश्य में कृतकार्य हुए। सत्य तो यह है कि स्वामी जी एक उद्दंड देश-हितैषी हुए हैं। देशाभिमान, देशभक्ति और देशानुराग उनकी सब बातों में पाया जाता है। एक समय उन्होंने स्वदेशीय वस्तु प्रचार पर एक व्याख्यान दिया था। आज कल जिन जिन बातों की भारतवर्ष में आवश्यकता है, उन्हें वे भले प्रकार समझ गए थे, पर उन्हें एक मत फैलाने की एक ऐसी धुन थी कि दिल्ली दरबार में सय्यद अहमद ख़ां इत्यादि महानुभावों को अपने डेरे पर बुलवा कर उन्होंने कहा था कि भारतवर्ष में एक धर्म होना चाहिए और उन्हीं भावों का सत्यार्थप्रकाश समाप्त करते हुए उल्लेख भी उन्होंने किया है—

"सर्व सत्य का प्रचार कर सबको एक मत करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा, सबसे सबको सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा, सहाय, और आप्त जनों की सहायता और सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिसमें सब लोग सहज में धर्म्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि कर के सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

आधुनिक ग्रन्थकार और प्रकाशक

मनु, वाल्मीकि, नारद, वशिष्ठ और याज्ञवल्क्य जैसे प्राचीन और यूरोप तथा एमेरिका में निवास करनेवाले अर्वाचीन विद्वानों के सिद्धान्त जानने और उपदेश सुनने के लिये पुस्तकें फोनोग्राफ़ हैं। मास्टर विद्यार्थियों को संथा कण्ठ न होने पर मारता है किन्तु पुस्तक से बेमारे शिक्षा मिल जाती है। जो व्यक्ति पुस्तक से प्रेम रखता है उसे विश्वस्त मित्र, सच्चे उपदेशक और सुशासक की आवश्यकता नहीं रहती है। पापों से छुड़ा कर सुमार्ग में लगाने, विपत्ति के समय धैर्य देने और निरुद्यमी को उद्योगी तथा कङ्गाल को लक्ष्मीसम्पन्न बनाने के लिये पुस्तक मित्र से बढ़ कर शिक्षा देती है। अपराधी को उसका अपराध और दण्ड बतला देने के लिये पुस्तक बिना फीस का वकील है। पुस्तक ही होनहार प्रजा को भले और बुरे मार्ग पर चलाने का सांचा है।

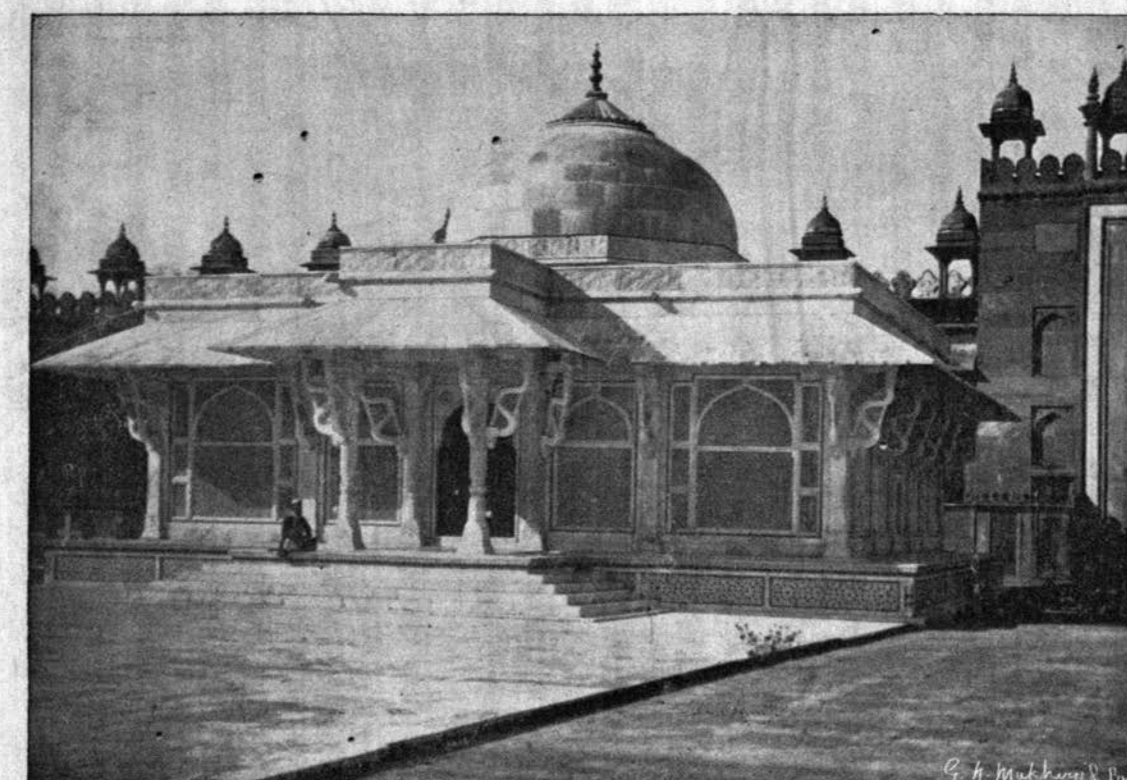
यूरोपियन लोग पुस्तकों के गुणों को अच्छी तरह जानते हैं। उन लोगों में पुस्तकों का बड़ा आदर है। नवीन पुस्तक प्रकाशित होते ही हाथों हाथ बिक जाती है। समय के फेर से भारतवासी पुस्तकों के लाभों को भूल गए हैं। यहां एक बार छपने बाद पुस्तक को प्रेस का पुनरावृत्ति के लिये मुख देखना भी नसीब नहीं होता है। प्रथम तो उत्तम पुस्तकों के छपने का सौभाग्य ही क्यों मिलने लगा। कदाचित् छपी भी तो प्रकाशकों की अलमारियां सेवन किया करती हैं। किन्तु यूरोप और एमेरिका में एक एक पुस्तक सौ सौ संस्करण को पहुंचती हैं। भारतवर्ष की

प्राचीन कहावत है कि लक्ष्मी और सरस्वती का बैर है। अर्थात् जिस घर में विद्या है उसमें धन नहीं, और धनवाले में विद्या नहीं रहती। परन्तु यूरोप वालों ने इस बात को मिथ्या कर डाला। वहां अनेक विद्वान् केवल पुस्तक रचना से ही धनाढ्य हुए हैं। सत्य पूछो तो यूरोप वालों के लिये पुस्तकें बनाना भी आज कल अच्छा पेशा होगया है। परन्तु भारत की अपेक्षा वहां ग्रन्थकर्त्ता बनना बड़ा कठिन है। यूरोप और अमेरिका में ग्रन्थरचना करने का वही साहस कर सकता है जो समालोचकों की लेखनी के कुठार के आगे बच सके। केवल इतनाही नहीं, वरन वहांवालों को इस कार्य के लिये श्रम भी अधिक पड़ता है। इसका फल यह होता है कि वहां के ग्रन्थकर्त्ता वास्तव में विद्वान् होते हैं और पुस्तकें लाभ उठाने योग्य।

भारतवर्ष और विशेष कर हिन्दी भाषा में प्रायः इसका उलटा व्यवहार है। ऐसा कहने से मेरा यह प्रयोजन नहीं है कि हिन्दी में पुस्तकें अच्छी प्रकाशित नहीं होती हैं, किन्तु सच्ची समालोचना के अभाव से उत्तम पुस्तकों को कूड़ा करकट ढांक लेता है। इधर तो समालोचना का अभाव है, और उधर पाठशालाओं में जो शिक्षा मिलती है वह अपूर्ण और सदोष है; इस कारण पाठक को उत्तम पुस्तक के पढ़ने का अधिकार नहीं होता है। जो लोग मदरसों में पढ़ते हैं, वे तो अर्द्धदग्ध की तरह न इधर के रहते हैं और न उधर के; और जिन्होंने नहीं पढ़ा है वे दूषित किस्से और हंसी दिल्लगी की पुस्तकों के अतिरिक्त और ग्रन्थों को पुस्तक ही नहीं समझते हैं। इसके सिवाय द्रव्य की सङ्कीर्णता भी उत्तम पुस्तक प्रकाशित होने में बाधा डालती है; परन्तु इस विषय में आज कुछ लिखने की इच्छा नहीं है। इस समय केवल इतना ही लिखना है कि हिन्दी के वर्तमान ग्रन्थकार और प्रकाशक कैसे हैं। मेरा कथन किसी पर आक्षेप की दृष्टि से नहीं है, किन्तु सच्ची बात पर लोगों का ध्यान आकर्षित करना मेरा कर्तव्य है।

मेरी समझ में अच्छे अच्छे विद्वान् जिनकी लेखनी से देश का उपकार और भाषा का भण्डार भरना सम्भव है, उनमें से थोड़ों को छोड़कर शेष पुस्तक बनाने में उपेक्षा करते हैं। प्रत्युत ऐसे लोगों की संख्या अधिक है जो अंगरेज़ी वा संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी भाषान्तर करने के लिये, अन्य भाषाओं को टटोलते हैं। हिन्दी में नवीन रचित पुस्तकें कम बनती हैं, किन्तु अधिकतर ऐसी हैं जिनको बङ्गला गुजराती मराठी की पुस्तक के आधार पर लिख कर लेखक अपनी रचना प्रसिद्ध करता है। हिन्दीवालों में ऐसे लोगों की भी न्यूनता नहीं है जो दूसरे की बनाई पोथी के सींग पूंछ और नाम बदल कर अपने स्वार्थ वा प्रशंसा के लिये आप रचयिता वा अनुवादक बनते हैं और इसके द्वारा परिश्रम करनेवाले के मुख का कौर छीन कर स्वयं लाभ उठाते हैं। इनके अतिरिक्त वे लोग हैं जो पुस्तक रचने की योग्यता न होने पर भी ग्रन्थकारों की लिस्ट में नाम लिखवाने के लिये रद्दी सद्दी पुस्तकें बनाकर ग्रन्थकार बनते हैं। इसका यही फल होता है कि जैसे जैसे अनभिज्ञों और अधसिखुओं की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, वैसे ही वैसे विद्वानों की लेखिनी ढीली पड़ती जाती है और भाषा का भण्डार कूड़े करकट से भरता जाता है।

भाषा का भण्डार कूड़े करकट से भरने और उत्तम पुस्तक प्रकाशित न होने का भार केवल रचयिताओं ही पर नहीं है। अनेक प्रकाशक भी इस दोष के भागी हैं। आज कल के प्रकाशकों में से कितने हो लोगों ने एक सिद्धान्त बना लिया है। वह सिद्धान्त चाहे उनके लिये लाभदायक हो, किन्तु भाषा और व्यापार को इससे अवश्य हानि होती है। वह सिद्धान्त यह है कि जब तक एक व्यक्ति किसी पुस्तक को अधिक द्रव्य लगा कर बनवाता और छापता है, दूसरे प्रकाशक चुपचाप बैठे रहते हैं; किन्तु उसके प्रकाशित ग्रन्थ की अधिक बिक्री देखते ही उसपर टूट पड़ते हैं। गवर्नमेंट ने



शैख़सलीम शाह चिश्ती का मज़ार—फ़तहपुर सीकर।

जो कापीराइट का नियम प्रचलित किया है, वह उनके अभीष्ट सिद्धि में बाधा डालता है, इस कारण उन्हें इसके लिये कुछ प्रबन्ध करना पड़ता है। वे लोग इस कार्य के लिये उस पुस्तक का नाम बदल कर थोड़ा बहुत विषय भी बदल डालते हैं ग्रैार बस, इसके द्वारा उसके मूल प्रकाशक को हानि के गढ़े में डाल कर लाभ उठाने को आप तैयार होते हैं। यह तो स्वार्थी प्रकाशकों की दशा है। किन्तु जो लोग प्रजा की रुचि नहीं जानते, अथवा जिन्हें यह विदित नहीं है कि किस पुस्तक की बिक्री अधिक होती है ग्रैार कौन कौन सी पुस्तक का प्रकाशित करना देशोपकार का हेतु है, वे पुस्तक छापने में सैंकड़ों रुपया व्यय कर व्याज की चक्की में पिसते ग्रैार अन्त में चार दिन की टुटरूं टूं करके प्रेस बेचते फिरते हैं।

थोड़े काल से हिन्दी पुस्तकों की आलोचना करने के लिये समालोचक समिति स्थापित करने की चर्चा हुई है, ग्रैार हर्ष का विषय है कि काशी की नागरीप्रचारिणी सभा इस कार्य को अपने माथे लेना चाहती है।* समिति से किसी अंश में कूड़ा करकट पुस्तकों का प्रकाशित होना बन्द हो सकता है, परन्तु मुझे सन्देह है कि समिति की ओर से कड़ी समालोचना होने पर बिक्री बन्द होने का डर कर, प्रकाशक लोग उसके पास पुस्तकें न भेजेंगे ग्रैार द्रव्याभाव से वह पुस्तकें खरीद कर समालोचना न कर सकेगी। इस कारण इस पत्रद्वारा मैं पुस्तकप्रकाशकों ग्रैार लेखकों से मैंने जो कुछ ऊपर लिखा है, उस पर ध्यान देने का निवेदन करता हूं। आशा है कि अब से हिन्दी भाषा को इन कलङ्कों से मुक्त करने का लेखक अनुवादक ग्रैार प्रकाशक यत्न करेंगे ग्रैार समिति भी अपना कार्य आरम्भ कर यह प्रमाणित कर देगी कि भाषा के भण्डार में से कूड़ा करकट पुस्तकों को निकाल फेंकना ऐसा होता है।

* काशी ना० प्र० सभा ने उस कार्य को करना स्वीकार नहीं किया—देखो सरस्वती भाग २ पृष्ठ २५४ —सम्पादक।

मैं प्रजा को आईन के बन्धन से अधिकतर जकड़ना अच्छा नहीं समझता हूं, ग्रैार मेरी सदा इच्छा यही रहती है कि जो कार्य हम स्वयं कर सकते हैं उनमें सरकार से सहायता न मांगी जाय। परन्तु भारत की शिक्षित प्रजा बिना सरकार की प्रेरणा के कुछ काम करना नहीं जानती हैं, इसलिये मुझे यहां पर यह लिखने की आवश्यकता हुई है कि जो लेखक वा प्रकाशक आईन से बचने के लिये पुस्तक का नाम वा थोड़ा बहुत विषय बदल कर ग्रैारों को क्षति पहुंचाना चाहते हैं वे अवश्य सरकार की दृष्टि में आने योग्य हैं। ग्रैार इसके सिवाय अर्द्धदग्ध लेखकों को योग्यता प्राप्त करने की उत्तेजना देकर योग्य विद्वानों का नवीन पुस्तकों की रचना ग्रैार भाषान्तर में उत्साह बढ़ाना भी कम आवश्यक नहीं है। अन्त में मैं इतना ग्रैार लिखना चाहता हूं कि आज कल ऐयाशी, तिलस्म, जासूसी ग्रैार प्रेम कहानी के नाटक उपन्यासों से जो हिन्दी का भण्डार भरा जा रहा है, यह भी साहित्य के लिये हितावह नहीं है। इसकी जगह यदि हिन्दी के प्रेमी चरित्र शोधन, व्यापार, शिल्प, विज्ञान, रसायन, यूरोप ग्रैार भारतके इतिहास, यूरोपवालों की उन्नति के स्वरूप ग्रैार साधन आदि के विषय में अपनी लेखनी उठाने का साहस करें तो अवश्य हिन्दी का उपकार हो सकता है।

फ़तहपुर सिक्री

भारतवर्ष के, ग्रैार विशेष कर उसके मुसलमानी राजत्वकाल के, इतिहास में दिल्ली के बादशाह अकबर का नाम इस समय संसार में प्रसिद्ध है, ग्रैार वह अब तक मुसलमानों बादशाहों में अत्यन्त बुद्धिमान, नीतिकुशल, दूरदर्शी, योग्य ग्रैार न्यायप्रिय माना जाता है। वास्तव में बाल्यवस्था ही में बिना किसी प्रकार की शिक्षा अथवा किसी भांति का अनुभव प्राप्त किए इतने भारी राज्य का स्वामी हो बैठना ग्रैार परस्पर में विरोध वैमनस्य फैलानेवाले राज्यों को जीतकर

अपने आधीन कर उनसे एक सामराज्य स्थापित करना, और उसके लिये ऐसी नीति का अवलम्बन करना कि जिससे वह राज्य युगयुगान्तर के लिये बना रहे, एक अलैाकिक बुद्धि ही का काम था। हिन्दुओं को उच्च उच्च पद देकर और उन्हें सम्मानित करके अपनी ओर मिला लेना और प्रसिद्ध प्रसिद्ध हिन्दू राज्यों से विवाहसम्बन्ध जोड़कर अपना पैर दृढ़ता से जामाना, और साथही अपने धर्म्म में क्रमशः परिवर्तन कर उसे हिन्दूओं के अनुकूल उस ढङ्ग से बना लेना कि जिसमें कट्टर मुसलमानों को छोड़कर और कोई भी विरोध न कर सके, अकबर की ही भाग्यपट्टलिका में लिखा था। सच तो यों है कि यदि अकबर की कुटिल नीति उसके पीछे भी चली जाती और औरङ्गज़ेब अपने कट्टरपने से उसमें उलट पलट न कर देता, तो आज दिन भारतवर्ष में मुगलों का ही राज्य दिखाई देता, हिन्दू राज्य कदाचित कहीं नाममात्र को ही रह गए होते। परन्तु ईश्वर की बलवती इच्छा के आगे जोर किसका है। सभी हाथ मल के रह जाते हैं। होता वही है जो उसने सोच रक्खा है। जो कुछ हो, परन्तु अकबर की प्रशंसा फिर भी संसार में उसकी बुद्धिमानी और नीतिकुशलता के लिये सदा होती रहेगी और औरङ्गज़ेब सदा इसलिये निन्दित बना रहेगा कि अकबर की उस नीति को उलट कर उसने भारतवर्ष से मुसलमानी राज्य की नेह स्वयं उखाड़ डाली।

आज हमारा विषय अकबर का जीवनचरित लिखने का नहीं है। उसके राज्य की मुख्य मुख्य घटनाएं सब इतिहासप्रिय लोगों पर पूर्णतया प्रगट हैं। आज हम उसकी एक राजधानी के विषय में कुछ लिखा चाहते हैं। अकबर ने पहिले तो अपनी राजधानी दिल्ली में और फिर आगरे में बनाई। संसार में चाहे कोई कितना बड़ा प्रतापी, बलवान और धनवान क्यों न हो, उसे सदा कोई न कोई वाञ्छा बनी रहती है। अकबर को सब कुछ रहते हुए भी सन्तान के न होने, अथवा यों कहिए कि दो बेर होकर जीवित न रहने से, बड़ी मानसिक व्यथा थी। आगरे से दक्षिण पश्चिम कोई २४ मील की दूरी पर एक छोटे से गांव में एक प्रसिद्ध फकीर शेख सलीम चिश्ती रहते थे। इन तक अकबर की व्यथा पहुंची और उन्होंने, ऐसा कहा जाता है कि, यह आशीर्वाद दिया था कि जा, तुझे एक पुत्र होगा। सन् १५६९ ई० में, जब अकबर रणथम्भोर का क़िला जीत कर लैाटा तो वह इन चिश्ती महाशय की मज़ारत को कई बेर गया और वहां दस दस बीस बीस दिन तक रहा। इस बेर बेर जाने आने का परिणाम यह हुआ कि वहां उसने अपने रहने के लिये स्थान बनवाए। शेख साहब ने एक मसजिद और मज़ार बनवानी प्रारम्भ की। देखा देखी अकबर के मन्त्रियों और दर्बारियों ने अपने अपने रहने के लिये भी स्थान बनवाए। सन् १५७२ में जब अकबर गुजरात जीतकर यहां लैाटा तो उसने इस स्थान का नाम फ़तहपुर रक्खा। पहिले वहां जो गांव था उसका नाम सिक्री था, इसलिये इतिहास में यह स्थान फ़तहपुर सिक्री के नाम से प्रसिद्ध है। इसी वर्ष में अकबर की रानी जोधाबाई को फ़तहपुर में एक लड़का उत्पन्न हुआ, जिसका नाम शेख साहब के उपलक्ष में सलीम रक्खा गया। आगे चलकर यही सलीम जहांगीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस अवसर पर अकबर ने यहां पर और अनेक राजप्रासाद बनवाए और चारो ओर एक पक्की पत्थर की दीवार बनवादी। तबसे वह यहां विशेष कर रहने लगा। परन्तु काल बड़ा बली है। सदा किसी वस्तु को एकही अवस्था में रहने नहीं देता। अपने चञ्चल और क्रूर हाथों से कुछ न कुछ उलट फेर करता ही रहता है। जहां एक समय बड़े बड़े राजप्रासाद खड़े थे, वहां अब खण्डहर देखने में आते हैं। इसी फ़तहपुर को अब देखकर पूर्वकाल की राजश्री का अनुमान मात्र हम कर सकते हैं। कुछ दिनों तक फ़तहपुर की अवस्था बड़ी मन्द थी, परन्तु अब लार्ड कर्ज़न महोदय की कृपा से मरम्मत हो रही है, और आशा

है कि बचे बचाए स्थान आगे के लिये सुरक्षित हो जांय। हम अपने पाठकों से अनुरोध करते हैं कि जब कभी उन्हें आगरे जाने का अवसर प्राप्त हो, तो वे अवश्य कष्ट उठाकर फ़तहपुर देखने जांय। हमें विश्वास है कि वे उस स्थान को देखकर वहां तक जाने में जो कष्ट उन्हें होगा उसे भूल जांयगे। आज हम अपने पाठकों के कौतूहलवर्द्धनार्थ इस स्थान के मुख्य मुख्य राजप्रासादों और स्थानों का चित्र देकर उनका संक्षेपतः कुछ वर्णन भी करेंगे, जिसमें हम आशा करते हैं कि उनको इन स्थानों के स्वयं देखने की इच्छा उत्पन्न हो और वे अपनी इच्छा को पूर्णकर अपने नेत्रों को सफल करें।

हम मुख्य मुख्य प्रासादों का वर्णन करने के पहिले इस नगर का साधारणतः वर्णन करेंगे। इस नगर की परिधि सात मील के लगभग है और जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, यह आगरे से २४ मील की दूरी पर है। परन्तु आगरे से फ़तहपुर तक एक अच्छी पक्की सड़क बनी हुई है, जिसके दोनों ओर सुन्दर पेड़ों की पंक्तियां अपनी शीतल छाया से पथिकों के श्रम को दूर करती हैं। यह नगर सन् १५६९ और १६०१ ई० के बीच में बना है। उसके तीन ओर ऊंची पक्की दीवाल है, जिनमें स्थान स्थान पर ६ या ७ बड़े बड़े फाटक हैं। चौथी ओर एक बड़ी भारी झील से यह रक्षित है। इस नगर के देखने से ऐसा जान पड़ता है कि अकबर की मृत्यु के पीछे यह छोड़ दिया गया और फिर इसमें कोई न रहने लगा। यदि शेख़ सलीम चिश्ती की मजार और जामे मसजिद वहां न होती, तो आज दिन लोग इस नगर को भूल ही जाते और जितने राजप्रासाद वहां इस समय वर्तमान हैं, सब खण्डहर ही खण्डहर देख पड़ते। परन्तु ईश्वर की कृपा से बहुत से प्रासाद वहां ज्यों के त्यों वर्तमान हैं और इधर भारत गवर्नमेण्ट में लाखों रुपए खर्च करके उनका जीर्णोद्धार कराया है, जिससे उनकी अवस्था अब बहुत अच्छी हो गई है। यहां जितने भवन इस समय वर्तमान हैं, सब प्रायः लाल पत्थर के बने हैं, जो निकट की पहाड़ी से खोद कर लिए गए थे। अकबर की बनवाई हुई इमारतों में प्रायः यह देखने में आता है कि उसने लाल पत्थर से बहुत काम लिया है। संगमर्मर तो नाममात्र को है।

आगरे से जो सड़क फतहपुर को चली आई है उसपर से नगर के अन्दर जाने से दो सड़कें मिलती हैं। इनमें से एक तो नगर के दक्षिण पश्चिम ओर को चली गई है और दूसरी शाही भवनों की ओर आती है। इस सड़क के दोनों ओर पहिले दूकानें और छोटे छोटे मकान थे और एक प्रकार का छोटा सा बाज़ार बसा हुआ था। इस सड़क पर पहिला देखने योग्य जो स्थान मिलता है वह दीवान आम है। उसके पूर्व ओर एक बड़ा भारी चौक है जो लगभग ३६८ फ़ीट लम्बा और १८१ फ़ीट चौड़ा है, और पश्चिम की ओर एक खुला हुआ मैदान है जिसमें पहिले एक सुन्दर वाटिका लगी हुई थी। इस ओर से महलों और दूसरे राजभवनों में जाने का मार्ग है।

पूरबवाले चौक के चारो ओर दालान बनी हुई है, जिसके आगे छज्जे निकले हुए हैं। दीवान आम के नाम से प्रसिद्ध जो स्थान है वह ३० फ़ीट लम्बा और २१ फ़ीट चौड़ा है। उसके चारो ओर १० फ़ीट चौड़ा एक बरामदा चला गया है। पूर्व वाले बरामदे के तीन भाग कर दिए गए हैं, और बीच में लाल पत्थर की सुन्दर जाली बनी हुई है। इन्हीं दो जालियों के बीच में न्यायाधीश बादशाह के बैठने का स्थान था। दीवान आम से सटे हुए और बड़े बड़े दालान हैं जिनमें लाखों मनुष्य बैठ सकते हैं। अब इन दालानों की अवस्था बुरी हो रही है। दीवान आम की बनावट में किसी प्रकार की विशेषता नहीं है। दिल्ली और आगरे के किलों में जैसे दीवान आम हैं, वैसी ही बनावट इसकी भी है।

दीवान आम के पूर्व वाले चौक में से होकर फिर उसी सड़क पर चले जाने से जिस पर से होकर आए थे एक और चौक मिलेगा। यह